

समस्याएं उत्पन्न हो गयी है यथा-मृदा अपरदन में वृद्धि बाढ़ों की आवृत्ति तथा विस्तार में वृद्धि वर्षा में कमी के कारण सूखे की घटनाओं में वृद्धि जंतुओं की कई जातियों का विलोपन आदि। पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से प्रत्येक देश के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल के कम एक तिहाई भाग पर घना वनावरण होना चाहिए। परंतु इस पारिस्थितिकीय नियम का प्रत्येक देश में उल्लंघन किया गया है।

### वनोन्मूलन या वन विनाश के कारण (Causes of Deforestation)

वन विनाश के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

- **वनभूमि का कृषि भूमि में परिवर्तन:** मुख्य रूप में विकासशील देशों में मानव जनसंख्या में तेजी से हो रही वृद्धि के कारण यह आवश्यक हो गया है कि वनों के विस्तृत क्षेत्रों को साफ करके उस पर कृषि की जाये ताकि बढ़ती जनसंख्या का पेट भर सके।
- उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधों में स्थित कई विकासशील देशों में जनसंख्या में अपार वृद्धि होने के कारण कृषि-क्षेत्रों में विस्तार करने के लिए उनके वन क्षेत्रों के एक बड़े भाग का सफाया किया जा चुका है। भारत भी वन विनाश की इस दौड़ में पीछे नहीं है।
- **झूम खेती:** वनोन्मूलन का एक कारण झूम खेती भी रहा है। इसके कारण विश्व में उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का तेजी से विनाश हो रहा है। झूम खेती में किसी क्षेत्र विशेष की समस्त वनस्पति जला दी जाती है। जो राख शेष बचती है। वह भूमि की उर्वरता में मिलकर उसकी उर्वरता को बढ़ा देती है, इस भूमि पर वर्ष में दो-तीन फसले ली जा सकती है। जब इस भूमि की उर्वरता कम होने लगती है तो कृषक इस भूमि को छोड़कर नई भूमि पर इस प्रकार की फसल प्राप्त करते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में झूम खेती अधिक प्रचलित है।
- **वनो का चारागाहों में परिवर्तन:** विश्व के सागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों खासकर उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका में डेयरी फार्मिंग के विस्तार एवं विकास के लिए वनों को व्यापक स्तर पर पशुओं के लिए चारागाहों में बदला गया है।

- **औद्योगीकरण:** आर्थिक विकास हेतु तेजी से औद्योगीकरण हो रहा है। उद्योगों को स्थापित करने हेतु वन काटकर जमीन उपलब्ध करायी गयी है। इन उद्योगों में कच्चा माल एवं ईंधन हेतु प्रति वर्ष लाखों हैक्टेयर वन काटे जा रहे हैं। खनन के कारण भी जंगल काटे जाते हैं। इसी प्रकार पैकिंग उद्योग भी वनों की क्षति पहुंचाता है।
- **अतिचारण:** विकास देशों में दुधारू पशुओं की संख्या तो बहुत अधिक है परंतु उनकी उत्पादकता निहायत कम है, ये अनर्थिक पशु विरल तथा खुले वनों में भूमि पर उगने वाली झाड़ियों घासों तथा शाकीय पौधों को चट कर जाते हैं, साथ ही ये अपनी खुरों से भूमि को रौंद देते हैं कि उगते पौधे नष्ट हो जाते हैं तथा नये बीजों का अंकुरण तथा छोटे पौधों का प्रस्फुटन नहीं हो पाता है।
- **वनाग्नि:** प्राकृतिक कारणों से या मानव जनित कारणों से वनों में आग लगने से वनों का तीव्र गति तथा लघुतम समय में विनाश होता है। वनाग्नि के प्राकृतिक स्रोतों में वायुमंडलीय बिजली सर्वाधिक प्रमुख है।
- **निर्धनता:** वनोन्मूलन का एक कारण देश में निर्धनता की अधिकता भी है। भारतवर्ष जैसे विकासशील देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहा है। इनकी आजीविका का प्रमुख स्रोत वन से प्राप्त होने वाली लकड़ी एवं गौण उपजें हैं। अतः जनसंख्या के बढ़ने के साथ यदि गरीबी बढ़ती है। तो वनोन्मूलन भी बढ़ता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिवेशन में श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था, “गरीबी सबसे अधिक प्रदूषण फैलाती है।”
- **बहु-उद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाएं:** इन योजनाओं के कार्यान्वयन के समय विस्तृत वन-क्षेत्र का क्षेत्र का क्षय होता है क्योंकि बांधों के पीछे निर्मित वृहद् जल भंडारों में जल के संग्रह होने पर वनों से आच्छादित विस्तृत भूभाग जलमग्न हो जाता है।

### वनोन्मूलन के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Effects of Deforestation)

- वनोन्मूलन के प्रतिकूल प्रभावों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं।
- **पर्यावरण का दुष्प्रभाव:** प्राकृतिक संतुलन में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः वन विनाश का पर्यावरण पर प्रत्यक्ष रूप में बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपजाऊ

भूमि का कटाव, बाढ़ सूखा, कम वर्षा, पर्यावरण प्रदूषण इत्यादि वन विनाश के भी परिणाम हैं।

- **पानी की कमी:** वन पास की जलवायु को नर्म बनाकर बादलों को आकर्षित करते हैं। जिससे वर्षा होती है। वन विनाश के कारण पानी की उपलब्धता कम हो गयी है। वनों की कटाई से जन-संतुलन बिगड़ जाता है। यही नहीं, वनों के खत्म होने से तालाब और कुएं भी सूख जाते हैं। और वर्ष भर बहने वाले स्रोत भी बरसाती होकर रह जाते हैं।
- **मिट्टी का कटाव:** वनों की अनुपस्थिति में वर्षा का जल बिना किसी अवरोध के सीधे भूमि पर गिरता है। जिससे मिट्टी पर तीव्र आघात होता है। और मिट्टी की क्षति होती है। यही नहीं, वनों में वृक्षों की जड़े मिट्टी के नीचे तक जाकर मिट्टी को जकड़े रहती हैं जिससे वर्षा के कारण मिट्टी का कटाव नहीं होता और भूमि की उत्पादकता कम बनी रहती है। परंतु वनों के विनाश के कारण मिट्टी का कटाव सुगमता से और अधिक मात्रा में होती है।
- **उपजाऊ भूमि की कमी:** वनों के अभाव में बाढ़ नियंत्रण नहीं हो पाता है जिससे फसल एवं जानमाल की बर्बादी होती है, साथ ही साथ देश की उपजाऊ मिट्टी समुद्र में चली जाती है। फलतः भूमि की उत्पादकता कम हो जाती है और उपजाऊ भूमि की कमी हो जाती है।
- **भूस्खलन:** वनों की अत्यधिक कटाई से भूस्खलन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। भूस्खलन में जन एवं संपत्ति की अपार क्षति होती है।

#### वनोविनाश या वनोन्मूलन को रोकने के उपाय (Methods of Controlling Deforestation)

- वनोन्मूलन को रोकने के लिए निम्नलिखित उपायों को किया जाना चाहिए।
- वन प्रबंधन-वनोन्मूलन को रोकने के लिए समुचित वन प्रबंधन नीति अपनायी जानी चाहिए। इसके अंतर्गत:
- वनों के पेड़ों की कटाई विवेक पूर्ण एवं वैज्ञानिक ढंग से की जानी चाहिए।
- कीट जीव वाले मूल पेड़ों की जगह प्रभावशाली ढंग से उपयोगी नये वृक्ष लगाये जाने चाहिए।

■ वनों पर विनाशकारी प्रभाव डालने वाले पर्यावरणीय घटकों, जैसे- भूमि, वन, पौधों, में रोग आदि से वनों की रक्षा हेतु कार्यक्रम के विशेष प्रयास किये जाने चाहिए।

■ वृक्षारोपण अधिक किया जाना चाहिए। किस स्थान में विशेष आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार ही वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।

■ प्राकृतिक वन पौधों के स्थान पर फलों के बागान नहीं लगाने चाहिए। हिमालय के कई क्षेत्रों विशेषकर हिमाचल प्रदेश में वनों को काटकर सेब की खेती के कारण स्थानीय पर्यावरण को नुकसान पहुंचा है।

■ **वन संरक्षण:** वन विनाश को नियंत्रित करने के लिए वन प्रबंधन के साथ-साथ वन संरक्षण की भी आवश्यकता है। इस हेतु सरकार को वन क्षेत्रों को अपने अधीन लेकर वनों की कटाई पर पूर्ण नियंत्रण लगा देना चाहिए। जैसा कि भारत में वन सुरक्षा के अंतर्गत सरकार ने संवेदनशील वन पेड़ों की कटाई पर पूर्णतः रोक लगा दी है।

■ **सामाजिक वानिकी (Social Forestry):** सामाजिक वानिकी से अभिप्राय वन विकास की उस प्रणाली से है जिसके द्वारा समुदाय की आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर वृक्षारोपण तथा ईंधन की लकड़ी प्राप्त करने के लिए वृक्ष कटाव के कार्यक्रम तैयार किये जाते हैं। इसके अंतर्गत बंजर भूमि, ग्राम समाज की परती भूमि, नहरों, सड़कों एवं रेल लाइनों के दोनों ओर की खाली पड़ी भूमि, विकृत वन खंडों में वृक्षारोपण किया जाता है। संक्षेप में, सामाजिक वानिकी के लाभ निम्नलिखित हैं

- रिक्त पड़ी भूमि का व्यापक उपयोग
- बेरोजगारों को काम
- मनोरंजन स्थलों को विकास
- कुटीर उद्योगों का विकास
- दूषित वातावरण की स्वच्छता
- ग्रामीण शिल्पियों को काम
- गरीबों की आय में वृद्धि

■ **परिवहन मार्गों का विकास:** वनों की सुरक्षा के लिए जंगली क्षेत्रों में सड़क परिवहन तथा संचार के साधनों का विकास करना नितांत आवश्यक है। इससे वनों को सुरक्षित रखने में आसानी होगी।

- **जनप्रयास:** वनों के महत्व के संबंध में जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है। जब तक नागरिकों को यह अहसास नहीं होगा कि वन हमारे जीवन की आधारभूत आवश्यकता है, तब तक वनोन्मूलन नहीं रुकेगा।
- प्राचीन काल से भारत में वनों को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। जैसा कि अग्नि पुराण में कहा गया है। “ एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर होता है।” इसी से वनों का महत्व स्पष्ट होता है। दुर्भाग्यवश जनसंख्या वृद्धि एवं अज्ञानता के कारण वर्तमान में वनों की अधाधुंध कटाई की जा रही है।
- वनों के विनाश से उत्पन्न होने वाले गंभीर दुष्परिणामों के प्रति समय रहते सचेत करने का प्रयास करना चाहिए एवं शासन को इस संबंध में एक निश्चित वन नीति निर्धारित करके लोगों में वन संरक्षण के प्रति जागरूकता पैदा करने का प्रयास करना चाहिए।
- इस दिशा में चमोली में प्रारंभ हुआ चिपको आंदोलन, होशंगाबाद की मिट्टी बचाओ अभियान तथा श्यामपुर प्रखंड की महिलाओं को लकड़ी न काटने का संकल्प जन प्रयासों के उल्लेखनीय उदाहरण कहे जा सकते हैं।
- वन विनाश के खिलाफ कई पर्यावरणीय नारे लगाये जा रहे हैं, यथा- पश्चिमी घाट को बचाओ, बीमार हिमालय की रक्षा करो, अस्वस्थ गंगा को बचाओ आदि। रेनी ग्राम की महिलाओं द्वारा वनों के विनाश के विरुद्ध चलाया गया जन आंदोलन अब अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के कई देशों में पहुंच गया है। अमेजन बेसिन में वनों के बड़े पैमाने पर सामूहिक सफाये के खिलाफ व्यापक आंदोलन प्रारंभ हो चुका है।
- सन् 1952 की वन नीति के अनुसार जुलाई, 1952 से भारत सरकार ने वन महोत्सव मनाना प्रारंभ किया है। वन महोत्सव आंदोलन का मूल आधार- वृक्ष का अर्थ जल है, जल का अर्थ रोटी है और रोटी ही जीवन है। यह निर्विवाद सत्य है कि वनों के बिना धरातल पर किसी भी जीव-जन्तु का जीवित रहना संभव नहीं है। इसलिए वन संरक्षण को सर्वोत्तम प्राथमिकता दी जाये।
- **पर्यावरण संरक्षण विभाग का गठन:** भारत में 1980 में एक पर्यावरण संरक्षण विभाग गठित किया जो केंद्रीय सरकार का विभाग है तथा राज्य सरकारों से भी कहा गया कि वे पर्यावरण विभाग स्थापित करें। इन विभागों का कार्य पर्यावरण संरक्षण संबंधित नीतियां बनाना और उन्हें लागू करना है।
- **पर्यावरण संरक्षण संबंधी नीतियां:** राष्ट्रीय वन नीति 1986, प्रदूषण निवारण के लिए प्रारूप नीति विवरण दस्तावेज 1991, वन संरक्षण अधिनियम 1980, 1988, जल रोकथाम और प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम 1977, 1988, वायु रोकथाम तथा प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम 1981, 1987, जल राष्ट्रीय वन्य जीव कार्य योजना आदि प्रमुख हैं।
- **व्यापक पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986:** सन् 1986 में एक व्यापक पर्यावरण संरक्षण अधिनियम पूर्व कमियों को दूर करने के लिए लाया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत अनेक केंद्रीय और राज्य के अधिकारियों को अधिकार सौंपे गये। 20 राज्य सरकारों को यह अधिकार दिये गये जो अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वयन के लिए निर्देश जारी करने के लिए अधिकार दिये गये थे।
- **केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड:** वन व पर्यावरण मंत्रालय के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्था है। जल (प्रदूषण नियंत्रण एवं रोकथाम) अधिनियम, 1974 के प्रावधानों के अंतर्गत सितम्बर, 1974 में बोर्ड की स्थापना की गई।
- यह राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों तथा प्रदूषण नियंत्रण समितियों की गतिविधियों को समन्वित करता है साथ ही, पर्यावरण संबंधी प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण से संबंधित सभी मामलों पर केंद्र सरकार को सलाह देता है।
- केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों/प्रदूषण नियंत्रण समितियों तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से देश भर में 90 नगरों/महानगरों में 295 परिवेशी वायु गुणवत्ता निगरानी स्टेशनों की स्थापना की है जो परिवेशी वायु की गुणवत्ता पर नियमित निगरानी रखते हैं।
- **राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता निगरानी कार्यक्रम (N.A.M.P.):** इसके अंतर्गत नियमित निगरानी के लिए चार वायु प्रदूषणों के रूप में जैसे सल्फर डाई-ऑक्साइड ( $\text{SO}_2$ ) नाइट्रोजन ऑक्साइड ( $\text{NO}_2$ ) की पहचान स्थगित विविक्त पदार्थ (M.P.M) तथा अतः श्वसनीय स्थगित विविक्त पदार्थ के रूप में की गई है।

## पर्यावरण संरक्षण के लिए सरकारी उपाय

भारत में पर्यावरण की रक्षा के लिए एवं पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के लिए निम्न प्रयास किये गये हैं-

- इसके अलावा देश में सात महानगरों में अतः श्वसनीय सीसा व अन्य विषैले पदार्थ तथा बहुचक्रीय गंधीय हाइड्रोकार्बन पर निगरानी रखी जाती है।
- **राष्ट्रीय वनारोपण तथा पारिस्थितिकी विकास बोर्ड (M.P.M):** इसकी स्थापना 1992 में गई थी। इसके उत्तरदायित्वों में देश में वनारोपण, पारिस्थितिकी कायम रखना तथा पारिस्थितिकी विकास गतिविधियों को बढ़ावा देना शामिल है।
- **जैव-विविधता अधिनियम 2002:** देश के जैविक संसाधनों तक पहुंच को विनियमित करना, जिसका उद्देश्य जैविक संसाधनों के उपयोग में होने वाले लाभ में न्यायोचित भाग सुनिश्चित भाग सुनिश्चित करना है, साथ ही जैविक संसाधनों से संबंधित सहकारी ज्ञान विनियमित करना है।
- सरकार द्वारा जैव विविधता के संरक्षण से संबंधित मामलों को देखने हेतु बनाई एजेंसियों में समन्वय सुनिश्चित करने के लिए एक जैव विविधता संरक्षण योजना तैयार की गई है।
- चेन्नई में एक राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण स्थापित किया गया है।
- **राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय:** गंगा कार्ययोजना चरण-1 के कार्य 1985 में शुरू किये थे जिन्हें 31 मार्च, 2000, को बंद कर दिया गया। राष्ट्रीय नदी संरक्षण प्राधिकरण की संचालन समिति ने गंगा कार्य योजना और नदियों की सफाई संबंधित चल रही अन्य योजनाओं के कार्य की प्रगति की समीक्षा की। गंगा कार्य योजना के चरण-1 के तहत प्रदूषण कम करने से संबंधित 261 योजनाओं में से 258 योजनाओं को पूरा किया जा चुका है तथा शेष योजनाएं 30 सितंबर, 2001 तक पूरी होनी थीं।
- गंगा कार्य योजना के दूसरे चरण का राष्ट्रीय नदी संरक्षण कार्य योजना (एन. आर. सी. पी.) के साथ विलय कर दिया गया है। इस विस्तृत कार्य योजना के अंतर्गत अब तक 65 योजनाएं पूरी हो चुकी हैं।
- **ओजोन प्रकोष्ठ:** ओजोन परत को सुरक्षित रखने के लिए सत्तर के दशक के आरंभ में विश्वव्यापी प्रयास किये गये थे जिनके चलते 1985 में ओजोन नष्ट करने वाले पदार्थों ओ. डी. एस. विना समझौता हुआ और 1987 में मॉंट्रियल संधि प्रस्ताव पारित हुआ।
- **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा विकास:** वन तथा पर्यावरण मंत्रालय के तहत गठित अंतर्राष्ट्रीय सहयोग व समेकित विकास विभाग (I.C.S.D.) संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम नैरोबी, दक्षिण एशिया सहयोग पर्यावरण कार्यक्रम, कोलम्बो तथा समेकित विकास से संबंधित मामलों पर प्रमुख केंद्र के तौर पर काम करता है।
- केंद्र सरकार से यह मंत्रालय पर्यावरण से संबंधित विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय समझौतों एवं संधियों के लिए प्रमुख एजेंसी के रूप में भी काम करता है।

### पर्यावरण संरक्षण संबंधी सुझाव

प्राकृतिक पर्यावरण पर मुख्यतया तीन प्रकार के संकट होते हैं। दूषित वातावरण अधि-उपयोग तथा विनाश प्राकृतिक वातावरण को इन संकटों का सामना करने के लिए आवश्यक कार्य के दो पहलू हो सकते हैं। (अ) विनियामक तथा (ब) सुरक्षात्मक।

#### विनियामक नीति

- विनियम की कार्य नीति सही रूप में वहां लागू की जा सकती है। जहां पर क्रियाकलाप या परियोजनाएं प्रारंभ हो गयी हों उनसे यह अपेक्षा है कि:
- पर्यावरणीय क्षति के निर्धारण हेतु कार्य विधियां और मानक तैयार किये जाने चाहिए तथा पर्यावरण प्रदूषण के लिए व्यापक तथा वास्तविक मानक भी तैयार किये जाने चाहिए।
- केंद्रीय और राज्य प्रदूषण मंडलों को अधिक मजबूत और उदार बनाया जाना चाहिए।
- घरेलू और कृषि प्रदूषण विशेषकर कीटनाशकों से उत्पन्न प्रदूषण के स्रोतों का पता लगाने तथा सुधारात्मक उपाय करने के लिए एक प्रतिवेदन तैयार किया जाना चाहिए।
- पारियोजना द्वारा प्रदूषण के स्रोतों की पहचान करने तथा वास्तविक रूप में और समयबद्ध तरीके से किये जाने वाले उपायों को सुधार सके, इसके लिए एक विस्तृत प्रतिवेदन तैयार किया जाना चाहिए।
- उद्योगपतियों को सरकार के साथ बातचीत करके यदि आवश्यक हो तो इस बात के लिए राजी किया जाना चाहिए कि पर्यावरण के प्रभाव से लागत प्रभावित होती है। इसलिए विभिन्न उपायों के जरिए प्रदूषण नियंत्रण के लिए उन्हें अधिक जिम्मेदारी और नेतृत्व प्रदर्शित करने की आवश्यकता है।

- प्रदूषण वन वन्य जीवन तथा अन्य पर्यावरणीय मुद्दों के संबंध में कानूनों की अवहेलना के मामलों की सूचना देने पर सार्वजनिक सतर्कता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- सरकार के विनियामक कार्यों का विशेषकर प्रदूषण के संबंध में विकेंद्रीकृत किया जाना चाहिए जिसमें समुदाय के प्रतिनिधियों को उचित प्रशिक्षण और उपकरण दिये जायें।
- प्रदूषण की रोकथाम और पर्यावरणीय क्षति को रोकने में जनता की भागीदारी और गैर-सरकारी संगठनों को शामिल करके एवं अच्छी संस्थाओं के माध्यम से आवश्यक तकनीकी सहायता उपलब्ध कराकर जो कि इस प्रकार की जानकारी और तकनीकी सलाह देने के लिए जिम्मेदार हैं, सरल बनाया जाना चाहिए तथा केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा समुचित तंत्र स्थापित करके सार्वजनिक शिकायतों की सुनवाई को प्रभावी बनाया जाना चाहिए।
- यह दुर्घटना तब हुई जब टैंक में गलती से पानी चला गया तथा टैंक में अभिक्रिया होने के बाद टैंक अत्यधिक गर्म हो गया जिससे कूलिंग सिस्टम के फेल हो जाने के कारण ठण्डा नहीं किया जा सका जिसके कारण टैंक में विस्फोट हो गया। बचाव के अन्य साधन भी कार्य नहीं कर रहे थे। लगभग 40 टन मिथाइल आइसोसाइनेट (MIC) 40 किलो 'फास्जीन' की अशुद्धि के साथ वायुमण्डल में फैल गई।
- MIC की कम सांद्रता, फेफड़े, आंखों एवं त्वचा को नुकसान पहुंचाती है जबकि इसकी अधिक सांद्रता से फेफड़े से ऑक्सीजन खत्म हो जाती है। जिससे मृत्यु हो जाती है।
- दिसम्बर की ठण्डी रात में यूनियन कार्बाइड के प्लांट के चारों ओर बादल की तरह कुहरे थे। जिससे MIC का फैलाव लगभग 40 वर्ग किमी. क्षेत्र में हो गया। अधिकारिक आंकड़ों के अनुसार लगभग 5100 व्यक्ति तत्काल मारे गये तथा ढाई लाख लोग MIC से प्रभावित हुये। लगभग 65,000 लोग आंखों, श्वसन तंत्र, तंत्रिकीय तंत्र, पाचन एवं त्वचा संबंधी कठिन समस्याओं के शिकार हुये। लगभग 1 हजार लोग अंधे हो गये।
- इस दुर्घटना के बाद हर नुकसान की भरपाई में लगभग 570 मिलियन डॉलर खर्च हुये तथा इस दुर्घटना के बाद कम्पनी ने अपने सेफ्टी पर 1 मिलियन डॉलर खर्च किये।

### सुरक्षात्मक नीति

- सुरक्षा की कार्य नीति में लोगों को जागरूक करना, कानूनों को कड़ाई से लागू करना, परियोजनाओं पर परिवेशीय प्रभाव का मूल्यांकन तथा परिस्थितिकीय तंत्र की उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रयास करना शामिल है।
- जनता की जागरूकता को बढ़ाना लाभकारी सिद्ध हो सकता है यदि उन्हें खतरों से सचेत कर दिया जाये तथा इसमें कड़े दंडात्मक उपाय, वित्तीय उपाय और कार्यकलापों का उनके क्रियान्वयन से पूर्व संगतियुक्त पर्यावरणीय प्रभाव के मूल्यांकन से निष्पादित करने वाली एजेंसियों द्वारा किये जाने वाले उपायों के जरिये प्रकृति के अपकर्ष को रोका जा सकता है।
- प्रकृति के पुनर्सृजन तथा पारिस्थितिकीय तंत्र की आवश्यकता में बढ़ोतरी करके विनाश को रोका जा सकता है।

### पर्यावरण प्रदूषण: कुछ दुर्घटनाएँ

#### भोपाल गैस त्रासदी

- विश्व की सबसे भीषणतम औद्योगिक दुर्घटना 3 दिसम्बर, 1984 को मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में हुई।
- यह दुर्घटना "यूनियन कार्बाइड कम्पनी" में हुई जो "मिथाइल आइसोसायनेट" (Methyl Isocyanate MIC) का उपयोग करके 'कार्बाइल (Carbaryl)' नाम कीटनाशक बनाती थी।

#### भूमिगत जल में आर्सेनिक प्रदूषण

- पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश विषैली भारी धातु आर्सेनिक के प्रदूषण से सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र है।
- आर्सेनिक प्रदूषण की पहली रिपोर्ट पश्चिम बंगाल में सन् 1978 को तथा बांग्लादेश में सन् 1993 में आयी।
- आर्सेनिक के विषैलेपन का आगे चलकर गम्भीर परिणाम निकलता है। यहाँ के स्थानीय लोग जिन्होंने 10 से 14 वर्षों तक भूमिगत जल से आर्सेनिक की थोड़ी मात्रा ली, वे अचानक त्वचा पर काले व सफेद धब्बे के रो से पीड़ित हो गये। इस रोग को 'मिलैनोसिस' (Melanosis) कहते हैं। यही धब्बे बाद में कुष्ठ रोग (Leprasy) युक्त त्वचा बना देते हैं। इसके गंभीर परिणाम पित्ताशय व फेफड़ों के कैंसर के रूप में सामने आते हैं।

- बच्चे आर्सेनिकोसिस (Arsenicosis) से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। इससे प्रभावित लोगों का प्रायः सामाजिक बाहिष्कार किया जाता है, बच्चे स्कूलों से वंचित हो जाते हैं तथा महिलाओं का वैवाहिक जीवन खत्म हो जाता है।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization) ने आर्सेनिक की जल में अधिकतम उपलब्धता का मानक 10 Mg/l बनाया है। पश्चिम बंगाल में तकरीबन 4 करोड़ लोग प्रदूषित जल में बढ़ते आर्सेनिक की खतरे से भयभीत हैं। “आर्सेनिक रिस्क जोन” के अन्तर्गत चौबीस परगना, हुगली, मुर्शिदाबाद, कोलकाता के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र व बेहला आदि आते हैं।
- पहले यह अनुमान लगाया जाता था कि भूमिगत जल में आर्सेनिक का प्रवेश गंगा डेल्टा में होने वाली भूगर्भीक क्रियाओं से होता है लेकिन हाल ही में इसके मानकीय कारणों का पता भी चलता है।
- आर्सेनिक प्रदूषण के मुख्य कारणों में धान और जूट की फसल में प्रयोग किये जाने वाले कीटनाशकों में प्रयुक्त “लेड आर्सेनेट” (Lead Arsenate) तथा कॉपर आर्सेनाइट (Copper Arsenite) की अधिकाधिक मात्रा भी है। इसके चलते पश्चिम बंगाल में जो ‘ट्यूबवेल्स’ ‘आर्सेनिक प्रदूषित’ हैं उन्हें लाल रंग में तथा जो ट्यूबवेल्स सुरक्षित हैं उन्हें हरे रंग में पेंट कर दिया गया है।
- आन्ध्रप्रदेश से भी भूमिगत जल में आर्सेनिक प्रदूषण के संकेत मिले हैं जहाँ यह स्पष्ट है कि आर्सेनिक का स्रोत प्राकृतिक चट्टानों में बल्कि हैदराबाद के पास औद्योगिक रूप से विकसित क्षेत्र में पायी जाने वाली लगभग 110 औद्योगिक इकाइयों के कचरे हैं जो कॉमन इफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट (Common Effluent treatment Plant - CETP) द्वारा लाया जाता है।
- इसके अलावा औद्योगिक अपवाहितों से भी जल आपूर्ति दूषित होती है।
- पीने के पानी में फ्लोराइड की कुछ मात्रा दांतों के क्षरण को रोकने के लिये आवश्यक होती है। इसलिये फ्लोराइड को जानबूझकर सार्वजनिक जल आपूर्ति में मिलाया जाता है जब फ्लोराइड की मात्रा कम होती है।
- शीतोष्ण जलवायु के क्षेत्र में प्रतिदिन एक वयस्क व्यक्ति द्वारा 0.6 मिलीग्रा. फ्लोराइड लिया जाता है जहाँ पर पीने के पानी में फ्लोराइड अलग से नहीं मिलाया जाता। जबकि यही अनुमान एक फ्लोराइड युक्त क्षेत्र के लिये 2 मिली ग्रा० प्रति व्यक्ति प्रतिदिन हो जाता है।
- जल में फ्लोराइड की सांद्रता को कैल्शियम की उपस्थिति सीमित करती है इसीलिये कैल्शियम की कमी वाले स्थानों में ही फ्लोराइड की सांद्रता अधिक पायी जाती है।
- भारत में फ्लोरोसिस (Fluorosis) एक गंभीर राष्ट्रीय समस्या है, जिससे आन्ध्रप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, एवं गुजरात के अनेक गांव प्रभावित हैं।
- फ्लोराइड का फैलाव डेंटल फ्लोरोसिस तथा स्केलेटल फ्लोरोसिस अर्थात् कंकालीय फ्लोरोसिस का मुख्य कारण होता है।
- WHO ने पीने के पानी में फ्लोराइड की मात्रा के मानक को 1.5 mg/l रखा है। फिर भी यह फिक्स नहीं है इसे स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बदला जा सकता है।

### यूरेनियम प्रदूषण

पर्यावरण में यूरेनियम स्रोतों, पर्यावरण व्यवहार, और मनुष्यों और अन्य जानवरों पर यूरेनियम के प्रभावों के विज्ञान को संदलभत करता है। यूरेनियम कमजोर रूप से रेडियोधर्मी है और इसकी लंबी शारीरिक अर्ध-आयु (यूरेनियम -238 के लिए 4.468 बिलियन वर्ष) के कारण बनी हुई है।

1. गुर्दे, मस्तिष्क, यकृत, हृदय और कई अन्य प्रणालियों के सामान्य कामकाज यूरेनियम जोखिम से प्रभावित हो सकते हैं, क्योंकि यूरेनियम एक जहरीली धातु है।
2. संभावित लंबी अवधि के स्वास्थ्य प्रभावों के बारे में सवाल के कारण, मौनियों में कम यूरेनियम (DU) का उपयोग विवादास्पद है।

### भारतीय एक्वीफरों में उच्च यूरेनियम: कहाँ, क्यों

कई अध्ययनों ने गुर्दे की बीमारियों के लिए पीने के पानी में

### भूमिगत जल में फ्लोराइड प्रदूषण

- फ्लोराइड सभी प्रकार के जल में विभिन्न मात्रा में उपस्थित होता है। भूमिगत जल में इसकी मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है जो चट्टानों की प्रकृति पर तथा उनके फ्लोराइड धारण करने वाले खनिजों पर निर्भर करती है।
- फ्लोराइड ‘सार्वजनिक जल व्यवस्था’ में प्राकृतिक स्रोत से प्रवेश कर सकता है। जैसे- फ्लोराइड युक्त चट्टानों से होने वाले अपक्षय के कारण भूमिगत जल प्रदूषित होता है।

यूरेनियम के संपर्क को जोड़ा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्रति लीटर यूरेनियम के 30 माइक्रोग्राम के अनंतिम सुरक्षा मानक निर्धारित किए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय के अध्ययन में 16 भारतीय राज्यों में एक्वीफरों से भूजल में व्यापक यूरेनियम संदूषण पाया गया है। मुख्य स्रोत प्राकृतिक है, लेकिन भूजल-टेबल में गिरावट और नाइट्रेट प्रदूषण जैसे मानव कारक समस्या को तेज कर सकते हैं, पर्यावरण विज्ञान और प्रौद्योगिकी पत्र में प्रकाशित अध्ययन में ड्यूक विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं का कहना है।

शोधकर्ताओं ने राजस्थान और गुजरात में 324 कुओं से पानी का नमूना लिया और जल रसायन का विश्लेषण किया। नमूनों के एक सबसेट में, उन्होंने यूरेनियम समस्थानिक अनुपात को मापा। उन्होंने राजस्थान, गुजरात और 14 अन्य राज्यों में भूजल रसायन विज्ञान के 68 पिछले अध्ययनों के समान आंकड़ों का विश्लेषण किया।

ड्यूक विश्वविद्यालय ने पर्यावरण के ड्यूक निकोल्स स्कूल में जियोकेमिस्ट्री और पानी की गुणवत्ता के प्रोफेसर, एवनर वोशोश के हवाले से कहा, 'राजस्थान में हमारे द्वारा परीक्षण किए गए लगभग सभी पानी के कुओं में यूरेनियम का स्तर है जो डब्ल्यूएचओ ... सुरक्षित पेयजल मानकों से अधिक है।'

'पिछले जल गुणवत्ता अध्ययनों का विश्लेषण करके, हमने उत्तर-पश्चिमी भारत के 26 अन्य जिलों और दक्षिणी या दक्षिण-पूर्वी भारत के नौ जिलों में इसी तरह के उच्च स्तर के साथ दूषित जलभरों की पहचान की है।'

### सुझाव या उपाय

'इस अध्ययन के जामूले में से एक यह है कि मानवीय गतिविधियां खराब स्थिति को बदतर बना सकती हैं, लेकिन हम इसे बेहतर भी बना सकते हैं,' वेंगोश ने कहा। 'परिणाम दृढ़ता से सुझाव देते हैं कि भारत में वर्तमान जल-गुणवत्ता निगरानी कार्यक्रमों को संशोधित करने और उच्च यूरेनियम प्रसार के क्षेत्रों में मानव स्वास्थ्य जोखिमों का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता है,' उन्होंने कहा।

'भारतीय मानक ब्यूरो में यूरेनियम के मानक को शामिल करना, यूरेनियम के गुर्दे को नुकसान पहुंचाने वाले प्रभावों के आधार पर पीने के पानी की विशिष्टता, जोखिम वाले क्षेत्रों की पहचान करने के लिए निगरानी प्रणाली स्थापित करना और यूरेनियम संदूषण को रोकने या इलाज के नए तरीकों की खोज करने से सुरक्षित पीने तक पहुंच सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी। भारत में लाखों लोगों के लिए पानी है।



## पर्यावरण नियोजन एवं प्रबंधन (ENVIRONMENTAL PLANNING AND MANAGEMENT)

### पर्यावरण

मानव तथा पर्यावरण के बीच विकास के आरंभिक काल से लेकर आज तक अन्तःप्रक्रियाओं (Interactive Processes) को देखा जा रहा है जो भविष्य में भी रहेगा। इन अन्तःप्रक्रियाओं के अन्तर्गत मानव प्राकृतिक/पर्यावरणीय संसाधनों को विदोहन तथा उपयोग करता है। जिससे उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं, उनके समाधान, नियंत्रण एवं प्रबंधन की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। पर्यावरण नियोजन एवं प्रबंधन एक व्यापक विषय है जिसमें मानव एवं पर्यावरण के बीच अन्तःप्रक्रियाओं से उत्पन्न समस्याओं और उससे संबंधित सभी विषयों को शामिल करते हैं।

उल्लेखनीय है कि मनुष्य के द्वारा अपने आर्थिक व अन्य गतिविधियों के कारण को प्रकृति संतुलित कर देती है, यदि यह प्रकृति की परिवर्तनों को आत्मसात करने की क्षमता तक या उसके भीतर होती है। जब मनुष्य के आर्थिक कार्यों द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन होमियोस्टैटिक क्रियाविधि की सहनशक्ति से अधिक हो जाते हैं तो इससे कई प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इन समस्याओं को दूर करना तथा इसका प्रबंधन अब आवश्यक हो जाता है। इसी संदर्भ में पर्यावरणीय नियोजन एवं प्रबंधन को विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों (पारिस्थिकीविदों, अर्थशास्त्रियों, पर्यावरणविद, समाजशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों और प्रशासकों आदि) द्वारा सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, यद्यपि पर्यावरण नियोजन एवं प्रबंधन के संदर्भ में उनके बीच मत भिन्नता पाई जाती है। पर्यावरण नियोजन एवं प्रबंधन तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न पक्षों की विवेचना आगे की जा रही है।

पर्यावरण के अन्तर्गत धरातल के किसी सतह पर किसी निश्चित समयावधि में उस स्थान पर पाये जाने वाले समस्त जैविक-अजैविक संघटकों तथा सामाजिक तत्वों के सकल योग को शामिल करते हैं। पर्यावरण के भौतिक संघटकों में अजैविक (स्थल, जल, वायु) संघटक तथा जैविक (पादप, जन्तु) संघटक को शामिल करते हैं जबकि सामाजिक संघटकों में अर्थव्यवस्था, राज्यव्यवस्था और समाज को शामिल करते हैं। पर्यावरण नियोजन एवं प्रबंधन को जानने के लिए हमें सर्वप्रथम पर्यावरणीय संसाधनों को जानने की आवश्यकता है।

### पर्यावरणीय संसाधन

पर्यावरणीय संसाधनों के अन्तर्गत प्रकृति में पाये जाने वाले समस्त जैविक तथा अजैविक (Biotic and abiotic) संसाधनों को शामिल करते हैं अर्थात्, प्राकृतिक संसाधनों को ही पर्यावरणीय संसाधन कहते हैं। चूंकि पर्यावरणीय संसाधन सीमित होते हैं जब मनुष्य द्वारा इनका विदोहन मनमाने तरीके से तथा अविवेकपूर्ण तरीके से किया जाता है तो समस्या उत्पन्न होती है। इसी संदर्भ में हमें पर्यावरण नियोजन एवं प्रबंधन की आवश्यकता पड़ती है, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण विदोहन तथा अनुकूलतम उपयोग सुनिश्चित किया जा सके। पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को रोकना तथा कम किया जा सके।



## विकास और पर्यावरण

विकास क्या है? इसकी परिभाषा क्या होनी चाहिए? इसे लेकर विचारकों में मतभेद पाला जाता है। फिर भी विकास को दो प्रमुख दृष्टिकोणों—मानव केन्द्रित दृष्टिकोण (Anthropocentric View-point) तथा पारिस्थितिकी केन्द्रित दृष्टिकोण (Ecocentric view-point) से बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। मानव केन्द्रित दृष्टिकोण के तहत अर्थशास्त्रियों ने विकास प्रक्रिया में मनुष्य का स्थान सर्वप्रथम माना है पर्यावरण का उसके बाद। अर्थात् विकास का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य की भौतिक समृद्धि प्राप्त करना है। इसमें पर्यावरण को गौण (Secondary) समझा जाता है। जैसे— खेती के लिए जमीन चाहिए तो इसके लिए वनों को काटना पड़ता है, अधिकांश संसाधन जो जंगल में पाये जाते हैं उनका दोहन करने से भी जंगल प्रभावित होता है। फैक्ट्रियां लगेंगी तो धुआ, शोर आदि होगा ही, किन्तु यह आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है।

जबकि पारिस्थितिकी विज्ञानियों द्वारा विकास के दिये गये पारिस्थितिकी केन्द्रित दृष्टिकोण में पर्यावरण की गुणवत्ता, पारिस्थितिकी संतुलन के अनुरक्षण को उसी प्रकार महत्व दिया जाता है जिस प्रकार मनुष्य की आर्थिक वृद्धि तथा उसकी जीवन शैली सुधार को दिया जाता है। इस दृष्टिकोण में नाजुक (Critical), संवेदनशील पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिक प्रक्रमों के अनुरक्षण पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। पारिस्थितिकी केन्द्रित विकास का यह दृष्टिकोण 'गेया परिकल्पना' (Gaia Hypothesis) पर आधारित है, जो आगे चलकर गेया सिद्धांत के रूप में जाना गया। जिसे ब्रिटिश जीवविज्ञानी जेम्स लवलाक ने यूनानी देवी 'गेया' के नाम पर 1970 में प्रतिपादित किया था। इस गेया परिकल्पना के दो पक्ष हैं। इसमें एक तरफ तो मनुष्य की आवश्यकताओं और विकास के बीच संतुलन को महत्व दिया जाता है वहीं दूसरी तरफ पर्यावरण की गुणवत्ता के अनुसरण पर बल दिया जाता है। यह परिकल्पना मनुष्य की आवश्यकताओं को नाजुक प्राकृतिक प्रक्रमों के अनुरक्षण के संदर्भ में देखती है। इसी संदर्भ में लवलाक तथा उनके सहायक लिन मार्गुलिस ने "पृथ्वी पर जीवन तात्कालिक जीव समूह के लिए सक्रिय रूप से धरातलीय दशाओं को अनुकूल बनाये रखता है" का प्रतिपादन किया। अर्थात्, "प्रारंभिक विचारकों के विपरीत पृथ्वी पर जीवन खास जलवायु दशाओं के साथ

अनुकूलन करने के बजाय अपने अस्तित्व एवं भावी विकास क्रम को बनाये रखने के लिए उन दशाओं को ही परिवर्तित करता है।"

उपर्युक्त पारिस्थितिकीय केन्द्रित विकास की विचारधारा पोषणीयता (Sustainability) को ही बताती है जो पारिस्थितिकीय कार्यों एवं पारिस्थितिकीय संसाधनों की स्थिर मांग को दर्शाती है जिससे एक तरफ विकास प्रबंधन के आवश्यक साधनों की सतत् आपूर्ति बनी रहे और दूसरी तरफ पारिस्थितिक संतुलन भी बना रहे। इसी विकास प्रक्रिया में पोषणीय विकास (Sustainable Development) की अवधारणा आती है। जिसमें पारिस्थितिकीय संसाधनों की बढ़ती मांग के साथ आर्थिक वृद्धि, जीवन शैली सुधार तथा पर्यावरण की गुणवत्ता एवं पारिस्थितिकीय संतुलन के अनुरक्षण पर ध्यान दिया जाता है। पोषणीय विकास की संकल्पना के संभवतः 1970 में आयी। इसका व्यापक प्रकार 'क्लब ऑवरूम' की प्रकाशित पुस्तक 'लिमिट टू ग्रोथ' द्वारा हुआ। शीघ्र ही इसके प्रभावस्वरूप पोषणीय विकास की संकल्पना को (शून्य वृद्धि की संकल्पना के स्थान पर) जनता द्वारा अपनाया जाने लगा। इसमें आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय लक्ष्य एक साथ मिलते हैं। इसी संदर्भ में 'पर्यावरण संवेदी विकास' (Environmentally Sensitive Development-ESD) की बात है जिसमें आर्थिक समृद्धि के लिए संसाधनों की दीर्घकालीन लगातार आपूर्ति को न्यूनतम पर्यावरणीय क्षति के आधार पर विवेकपूर्ण तथा अनुकूलतम उपयोग को ही सुनिश्चित किया जाता है। उपर्युक्त के साथ यदि पर्यावरण स्वास्थ्य दशा में बना रहता है तो इसे पोषणीय पर्यावरण कहा जाता है। जिसमें प्राकृतिक संसाधनों (जैविक व अजैविक) की दीर्घकालिक आपूर्ति (भावी पीढ़ियों के लिए भी) सुनिश्चित करते हुए प्रकृति के अनुरक्षण तथा संतुलन पर जोर दिया जाता है जिसमें गेया परिकल्पना, पारिस्थितिकी नियमों तथा पोषणीय विकास की धारणाओं का अनुसरण किया जाता है।

## पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन

पर्यावरण में मानव जनित क्रियाओं (प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थक व पंचम) तथा प्राकृतिक कारणों से निरन्तर परिवर्तन देखा जा रहा है जिससे पृथ्वी पर विद्यमान जीवन के प्रभावित होने का खतरा है। पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों की जब

प्रकृति स्थायी तथा अनुत्क्रमणीय हो जाती है तो पर्यावरण प्रबंधन एवं संरक्षण की बात आती है जिससे परिवर्तनों के कारण संभावित जोखिमों एवं क्षतियों को कम किया जा सके और साथ ही साथ पर्यावरण को आगे की पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षित बनाये रखा जा सके।

उपभोग-अभिमुख प्रौद्योगिकी तथा आर्थिक विकास के कारण आज पर्यावरण के सम्मुख कई गंभीर खतरे (प्रदूषण, संसाधन अवनयन, संसाधनों की समाप्ति, जीवन को खतरा) उत्पन्न हो गया है। अब यदि पृथ्वी पर जीवन को निरन्तरता प्रदान करने वाले तत्वों को सक्रिय बनाये रखने में उत्पन्न होने वाले संकटों पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता था। इससे संपूर्ण परितंत्र, खाद्य श्रृंखला के साथ लोगों की आजीविका को खतरा उत्पन्न होगा। इसलिए पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन आज अत्यन्त आवश्यक हो गया है। जिसे आगे बढ़ाकर निर्वहनीय तथा पर्यावरण अनुकूल जीवन पद्धति में बदलना होगा। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय स्तर पर सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं तथा समुदाय आधारित समूहों के साथ-साथ सामूहिक तथा व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास करने तथा भागीदारी की आवश्यकता है, जिसमें राजनीतिशास्त्री, अर्थशास्त्री, पारिस्थिति विज्ञानी, समाजशास्त्री, पर्यावरणविदों को मिलकर पालिसी मार्गदर्शक, कार्ययोजनाओं, प्रबंधन तकनीकों, जनभागीदारी आदि के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन को बढ़ावा दिया जायेगा।

पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन में सबसे पहला चरण उससे संबंधित विभिन्न जानकारी प्राप्त करना, विभिन्न क्षेत्रों में पर्यावरण अवक्रमण की स्थिति को जानना, उसके कारणों की जानकारी प्राप्त करना आदि आवश्यक है। इसके लिए हम एक भौगोलिक सूचना तंत्र (Geographic Information System-GIS) का उपयोग करते हैं, जिसमें पर्यावरण के सभी पहलुओं को एकत्रित करने, संचित करने, उनके सुधार करने उनका विश्लेषण करने, उनकी कल्पना करने तथा उनकी व्याख्या करने वाले तंत्र के रूप में GIS की प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं। GIS प्रौद्योगिकी की वैज्ञानिक अनुसंधानों, संसाधन प्रबंधन और विकास की योजना बनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। इससे आपदा वाले क्षेत्रों, कृषि, कारोबार, आपदा प्रबंधन, पर्यावरण प्रबंधन, भू-गर्भ विज्ञान, जल विज्ञान, भूमि के इस्तेमाल की योजना बनाना, मानचित्र बनाना, जोखिम प्रबंधन, स्थल की योजना

बनाना, अपवहन तंत्रों, भूमिगत जल के आंकलन, जल विभाजन की कल्पना तथा अनुप्रयोग, वन संसाधन, उनका आंकलन, मानचित्रण प्रयोग जैव विविधता आदि के संदर्भ में बेहतर आंकड़े उपलब्ध हो पाते हैं और उनका प्रयोग करके बेहतर योजना बनायी जा सकती है तथा पूर्वानुमान लगाया जा सकता है और हानियों को कम किया जा सकता है।

इसके बाद पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन में अगला चरण इसमें आने वाली चुनौतियों (जीव विविधता की हानि, जलवायु परिवर्तन, जल-प्रदूषण, ओजोन परत का कम होना तथा भूमि अवक्रमण) का पता लगाया जाता है। उनके आंकड़े विभिन्न स्तरों पर एकत्र किये जाते हैं। इसके बाद उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न नीतियां, कार्य-योजनाएं बनायी जाती हैं, बेहतर तरीके से लागू हो तथा बेहतर तकनीक का उपयोग हो। साथ ही बड़े पैमाने पर जन भागीदारी हो इसके लिए प्रोत्साहन, प्रलोभन आदि का भी प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा लोगों को जागरूक करना, उनकी सोच में पर्यावरण के प्रति बदलाव लाने के लिए शिक्षा, विज्ञापन तथा अन्य माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। वैश्विक साझेदारी को बढ़ावा देने के साथ निर्वहनीय विकास को प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है।

## संसाधन प्रबंधन

पर्यावरण का संरक्षण एवं प्रबंधन के संदर्भ में संसाधन प्रबंधन एक महत्वपूर्ण आयाम है। आधुनिक संसार में विकास की उपभोग मुखी प्रणाली अपनाने के कारण संसाधनों का अत्याधिक दोहन हुआ है तथा विकास के लिए संसाधनों पर दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इसके कारण गंभीर पर्यावरण अवक्रमण और संकट उत्पन्न हो गया है। आधुनिक समाज को अब विकास के उन उपायों के बारे में सोचने की आवश्यकता है जिनमें संसाधन का प्रयोग मितव्ययी तरीके से हो और संसाधनों की पुनः प्राप्ति हो सके। इस संदर्भ में पर्यावरण को अवक्रमित किये बगैर निर्वहनीय तरीके से प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करना होगा, और साथ ही निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति अनुकूलतम रूप से सुनिश्चित करनी होगी।

जैव संसाधनों में खाद्य रेशे, औषधियां, ईंधन की लकड़ी सजावटी पौधे और जानवर अर्थात् सभी जन्तु जैव संसाधन और वनस्पति जैव संसाधनों को शामिल किया जाता है। इन संसाधनों

में अधिकांश मानव भोजन के लिए प्रयोग की जाती है। इनमें से कई जन्तु व वनस्पति प्रजातियों को अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया है जो इनके अति दोहन के कारण है। इसलिए इनका संरक्षण एवं प्रबंधन आवश्यक है। वनों का संरक्षण, पुनर्जनन की आवश्यकता है। अपशिष्ट पदार्थों के प्रबंधन की आवश्यकता है क्योंकि जनसंख्या व नगरीकरण के साथ-साथ अपशिष्ट की मात्रा भी बढ़ती जाती है।

अतः संसाधन प्रबंधन द्वारा हम न केवल संसाधनों का विवेकपूर्ण इस्तेमाल, उनका संरक्षण सुनिश्चित कर सकेंगे, बल्कि यह भी सुनिश्चित कर सकेंगे कि भविष्य में उनकी अनवरत आपूर्ति होती रहें जो मानव विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

### पर्यावरण गुणवत्ता प्रबंधन

पर्यावरण में अनेक घटक पाये जाते हैं जो आपस में एक-दूसरे के साथ जटिल रूप से गुंथे हुए रहते हैं। इनमें से किसी भी घटक में होने वाला परिवर्तन पर्यावरण को या तो बेहतर बनाता है या फिर खराब। स्वास्थ्य तथा सुखमय जीवन के लिए पर्यावरण की गुणवत्ता या गुणवत्तापूर्ण होना आवश्यक है। इसलिए पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले घटकों के प्रभाव को कम करना तथा लाभ पहुंचाने वाले घटकों के प्रभाव को बढ़ाना चाहिए। जिसके लिए पर्यावरण गुणवत्ता प्रबंधन को अपनाया जाता है जिसमें पर्यावरण गुणवत्ता को निर्धारित करने वाले घटकों तथा उनके विभिन्न प्रयासों, गुणवत्ता मापन कसौटियों की रूपरेखा, मानकों, योजना बनाना, सप्रभाव मूल्यांकन, लेखा परीक्षण, जीवन चक्र मूल्यांकन, नियंत्रण प्रणालियों-विविध अधिनियमों आदि को शामिल किया जाता है।

इसमें रिहायशी, व्यावसायिक और औद्योगिक इमारतों की गुणवत्ता और पर्याप्तता वायु, जल, मृदा आदि प्रदूषण से जनस्वास्थ्य और सुरक्षा, पर्यावरण कारगरता कारकों तथा पर्यावरण का निर्माण करना, विभिन्न पर्यावरणीय घटकों की गुणवत्ता (वायु की गुणवत्ता, जल व मिट्टी की गुणवत्ता, वायु संघटना, भवनों की गुणवत्ता) अवांछित शोर नियंत्रण, प्रचालन की गुणवत्ता, विकिरणों का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव, पर्यावरण गुणवत्ता के विविध तत्वों की अवधारणाओं, मानकों तथा परिमाणों को शामिल किया जाता है, जिसके लिए विभिन्न

संसाधनों (जल, मृदा, खनिज पदार्थ, वन व वन्य जीव) के प्रबंधन की आवश्यकता होगी। संसाधन प्रबंधन के तहत हम प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग से संबंधित प्रमुख मुद्दों और समस्याओं का विवेचन करते हैं। प्राकृतिक संसाधन संरक्षण के लिए कार्यनीतियों का वर्णन, संसाधन संरक्षण और पुनर्जनन के लिए पहल, अपशिष्ट पदार्थों को कम करना, पुनः प्रयोग करना और पुनः चक्रण करना, अपशिष्ट प्रबंधन तथा उसके उपायों को शामिल करते हैं।

आधुनिक समाज में संसाधन प्रबंधन के संदर्भ में सर्वाधिक प्रमुख मुद्दा संसाधनों के पुनर्जनन और पर्यावरण अनुकूल तरीके से उनके अनुकूलतम तथा न्यायपूर्ण और प्रभावी इस्तेमाल की है। ऐसा देखा जा रहा है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली में समाज को सभी संसाधनों की कमी महसूस हो रही है। इसी संदर्भ में तेल और जल आज विश्वव्यापी क्षेत्रीय कठिनाईयों के केन्द्र बिन्दु बने हुए हैं। ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ़ती जा रही है और आर्थिक विकास की तीव्रता बढ़ती जा रही है, जल संसाधनों के पुनर्योजन, नियमन, विनियोजन और उपयोग के दीर्घकालीन तथा सतत् पॉलिसी की मांग बढ़ती जा रही है। पर्यावरण अवक्रमण से भौम जल का स्तर कम हुआ है साथ ही भूमि अवक्रमण, मृदा अपरदन (भू-क्षरण) और मरुस्थलीकरण भी बढ़ा है। इसके कारण उन साधनहीन लोगों की आजीविका के साधन कम हो गये हैं जो जमीन पर निर्भर थे। ज्ञातव्य है कि विश्व में भूमि का मात्र 10 प्रतिशत भाग ही कृषि योग्य है शेष अत्यधिक ढलवा, अत्यधिक ठण्डा, अत्यधिक गर्म, अत्यधिक आर्द्र या शुष्क है। चूंकि मृदा ही वह संसाधन है जिस पर हम सभी वास्तविक रूप से निर्भर हैं क्योंकि निर्माण के लिए, अपशिष्ट पदार्थों के संसाधन तथा जमीन/पानी को साफ करने में, खाद्यान्न व अन्य के लिए इसका स्थान महत्वपूर्ण है। मृदा प्रबंधन द्वारा मृदा अपरदन, मृदा लवणता, मृदा प्रदूषण को रोकने और मृदा उर्वरता को बनाये रखने की आवश्यकता है।

ऊर्जा संसाधन के क्षेत्र में प्रबंधन के अन्तर्गत नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत (सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, पन ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा, फ्युअल सेल ऊर्जा, जीव संहति ऊर्जा) के उपयोग को अनवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों स्रोत (प्राकृतिक ऊर्जा, गैस ऊर्जा, कोयला ऊर्जा) पर वरीयता दी जानी चाहिए। खनिज संसाधनों (धात्विक, गैर-धात्विक, जेम और रेडियोधर्मी) का उपयोग मितव्ययी तरीके से करना तथा उनके पुनःचक्रण का प्रयास भी करना चाहिए। चूंकि पर्यावरणीय गुणवत्ता एक गतिशील अवधारणा है।

इसलिए यह स्थान-स्थान पर अलग-अलग होती है। इसके कारगर प्रबंधन के लिए एक सकल योजना की आवश्यकता होती है जिसमें मौजूदा और प्रत्याशी वैश्विक और क्षेत्रीय सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक और पर्यावरणीय समस्याओं को शामिल किया जाए। साथ ही पर्यावरण संप्रभाव आकलन, पर्यावरणीय लेखा परीक्षण, जीवन चक्र मूल्यांकन, वैश्विक पर्यावरण चुनौतियों, संतोषजनक वैधानिक उपायों एवं प्रशासनिक व्यवस्था, मानकों की ISO 14000 श्रृंखला आदि का उपयोग करते हुए पर्यावरणीय गुणवत्ता को बनाने रखने का प्रयास किया जाता है क्योंकि इसकी गुणवत्ता स्वास्थ्य मानक जीवन व उसके विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

### पर्यावरण प्रबंधन क्या है?

पर्यावरण प्रबंधन में प्रमुख रूप से समाज का सामाजिक-आर्थिक विकास तथा सामान्य रूप से जीवमण्डल भण्डार (Biosphere Reserve) की स्थिरता तथा मुख्य रूप से एकाकी पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता बनी रहे को शामिल करते हैं। किन्तु पर्यावरण प्रबंधन को परिभाषित करना कठिन है क्योंकि यह व्यापक और जटिल अवधारणा है जिसमें पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण तथा नियोजन अनिवार्य शर्त है। पर्यावरण प्रबंधन के संबंध में 'डेनीस मीडोज' का कहना है कि, "पर्यावरण प्रबंधन की संकल्पना सामान्यतया पर्यावरण मॉडल से संबंधित होती है जो यह सुनिश्चित करता है कि पूंजी, वार्षिक कृषि-निवेश (Input) तथा भूमि विकास में वृद्धि के साथ खाद्य पदार्थों की आपूर्ति में भी वृद्धि होगी, परन्तु पर्यावरण प्रबंधन का मॉडल इन कारकों की सीमितताओं (limits), आने वाली चुनौतियों तथा समस्याओं से निपटने के लिए नीतियों को भी समाहित करता है।"

इसी प्रकार 'डी. थॉमसन' कहते हैं कि, "पर्यावरण प्रबंधन एक तंत्र होता है जो पर्यावरण एवं संसाधन के संरक्षण की समस्याओं का पूर्वानुमान करके उनसे बचाव करता है तथा उनका समाधान करता है।" जबकि 'सी. जे. बैरों' का कहना है कि "पर्यावरण प्रबंधन का संबंध प्रकृति को न्यूनतम क्षति पहुंचाने, पोषणीय आधार पर मनुष्य की आवश्यकताओं एवं मांगों को पूरा करने तथा उनमें सुधार से है।" जबकि कई अन्य पर्यावरणविदों ने पर्यावरण प्रबंधन को मानव केन्द्रित तथा पारिस्थितिकी केन्द्रित दृष्टिकोणों में समन्वय के आधार पर बताया है।

पर्यावरण प्रबंधन का यदि ऐतिहासिक परिवेश देखा जाए तो 1960 एवं 1970 के दशकों में इसका महत्व बढ़ गया क्योंकि इसी समय संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन बढ़ा तथा तीव्र प्रौद्योगिकी विकास के परिणामस्वरूप ओजोन क्षरण, भूमण्डलीय ऊष्मन, विभिन्न प्रकार के प्रदूषण आदि के रूप पर्यावरणीय समस्याओं ने विभिन्न देशों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। आरंभिक समय में पर्यावरण प्रबंधन के लिए 'टाप-डाउन उपागम' तथा सेक्टोरल एवं डिस्क्रीट विधि को अपनाया गया। जो वास्तव में एक मोनोस्टिक संकल्पना (एकक्षेत्रीय संकल्पना) ही था, जिसमें जन भागीदारी तथा जन सशक्तिकरण पर पर्याप्त ध्यान नहीं था। आगे चलकर पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण (होलिस्टिक संकल्पना) तथा 'बाटम अप उपागम' को अपनाया गया। प्रो. एम. ई. कोबली (1991) ने सीमांत अर्थशास्त्र (हरित अर्थशास्त्र) डीप पारिस्थितिकी (इकोसेण्ट्रिक विकास दृष्टिकोण), पर्यावरण रक्षण (पर्यावरण प्रतिघात आकलन एवं पर्यावरण प्रतिघात कथन) संसाधन प्रबंधन (लिमिट टू ग्रोथ) पोषणीय विकास तथा पोषणीय समाज, पोषणीय पर्यावरण आदि संकल्पनाओं का प्रतिपादन पर्यावरण प्रबंधन के लिए किया। जो प्रमुख रूप से मानव समाज के सर्वांगीण विकास की प्राप्ति, सामाजिक-आर्थिक विषमताओं की समाप्ति, पर्यावरण की गुणवत्ता एवं पारिस्थितिकी स्थिरता का अनुरक्षण करना, समाज में जीवन शैली की गुणवत्ता एवं आर्थिक वृद्धि को अधिकतम करना तथा पर्यावरण क्षति को न्यूनतम करने के उद्देश्य से किया गया।

पर्यावरण प्रबंधन में शामिल किये जाने वाले प्रमुख तथ्य निम्नलिखित हैं:-

- पर्यावरणीय संसाधनों का अविवेकपूर्ण तथा अनियमित दोहन पर नियंत्रण।
- पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण।
- पर्यावरणीय तत्वों की गुणवत्ता में वृद्धि करना।
- पर्यावरण के जैविक-अजैविक घटकों की सुरक्षा।
- प्रदूषकों के उत्सर्जन पर नियंत्रण तथा जैव विविधता संरक्षण तथा क्षरण पर रोक।
- पर्यावरण प्रबंधन के लिए किये गये प्रयासों के प्रतिफल का मूल्यांकन तथा सुधार करना।
- पर्यावरणीय शिक्षा, जनजागरूकता को बढ़ावा देना।

- पर्यावरण के विभिन्न पक्षों के अध्ययन एवं अनुसंधान की व्यवस्था करना।

पर्यावरण प्रबन्धन विश्व स्तर पर प्रत्येक राष्ट्र की आवश्यकता है जिसे मनुष्य की प्रकृति के साथ यथोचित समायोजन करके संभव बनाया जा सकता है। इस प्रकार पारिस्थितिकीय संतुलन एवं स्थिरता की व्यवस्थाओं के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों का विवेकीपूर्ण दोहन करना चाहिये।

### पर्यावरण प्रबंधन के प्रमुख उद्देश्य

इसका प्रमुख लक्ष्य पोषणीय विकास, पोषणीय पर्यावरण तथा पोषणीय समाज की प्राप्ति है, जिससे संबंधित प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- पोषणीयता के आधारों एवं पारिस्थितिकीय नियमों के अनुरूप प्राथमिक संसाधनों का विवेकपूर्ण विदोहन करना।
- प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।
- प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन को नियंत्रित करना।
- मानव कल्याण को अधिकतम एवं पर्यावरण की क्षति को न्यूनतम करना।
- पर्यावरणीय एवं सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों के साथ मनुष्य की अनुकूलनशीलता में सुधार करना तथा उसे बढ़ाना।
- फैशन तथा मांग, आर्थिक एवं प्रौद्योगिकीय स्थितियों, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी क्षमता, सामाजिक मूल्य, खुले विश्व बाजार तथा वैश्वीकरण के प्रति जनता के दृष्टिकोणों में हो रहे निरन्तर बदलावों के साथ सामंजस्य स्थापित करना।
- विकास से संबंधित परियोजनाओं के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करना।
- पर्यावरण अवनयन एवं पर्यावरण प्रदूषण का नियंत्रण करना।
- पर्यावरण प्रबन्धन की चल रही तकनीकों एवं रणनीतियों का पुनरीक्षण करना तथा आवश्यकता पड़ने पर उनमें संशोधन करना।
- प्राकृतिक प्रकोपों एवं आपदाओं के प्रभावों को कम करना।
- पर्यावरण प्रबन्धन के प्रभावी क्रियान्वयन के लिये नियम एवं कानून बनाना।

### पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता क्यों?

बढ़ते पर्यावरणीय प्रदूषण, पर्यावरणीय अवनयन तथा क्षय के कारण मानव जीवन की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे न केवल मानव स्वास्थ्य एवं उसकी कार्यक्षमता में परिवर्तन आता है बल्कि उसकी गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। साथ संसाधनों के अतिदोहन से उनके समाप्त होने का खतरा बढ़ता जा रहा है। आज अधिकांश जल संसाधन, वायु संसाधन मृदा में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है, वनों का अंधाधुंध दोहन, वन्य जीवों तथा समुद्री संसाधनों का अतिदोहन व शिकार ने कई प्रजातियों को विलुप्ति के कगार पर पहुंचा दिया है, जो हमारे पर्यावरण पारिस्थितिकी के साथ मानव विकास के स्थायित्वपूर्ण तथा टिकाऊ होने पर एक प्रश्न चिन्ह लगाता है। उपर्युक्त सभी के संदर्भ में पर्यावरण प्रबंधन की आवश्यकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। साथ ही पोषणीय विकास के लिए पर्यावरण प्रबंधन आवश्यक है।

### पर्यावरण प्रबन्धन के पारिस्थितिकीय आधार

पर्यावरण प्रबन्धन की योजना में निम्नांकित पारिस्थितिकीय नियमों एवं सिद्धान्तों पर ध्यान दिया जाता है-

- पृथ्वी में अनन्त ज्ञात-अज्ञात संसाधन है। प्रत्येक संसाधन की मात्रा सीमित है।
- किसी संसाधन के निर्माण तथा पारिस्थितिकीय, तंत्र के स्थायित्व के लिये प्रकृति सतत प्रयत्नशील रहती है।
- पारिस्थितिक तंत्र का दीर्घकालिक जीवन होता है। प्रत्येक में अस्थिरता तथा सामान्य में स्थापित है। मनुष्य मरणशील है परन्तु मानव-वर्ग दीर्घकालिक है।
- भौतिक घटनाओं के साथ जीवित प्रक्रमों का सहयोग, प्रकोप एवं आपदाओं की प्रचण्डता में वृद्धि कर देता है।
- प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में अनेक समस्यायें हैं। प्रत्येक समस्यायें एक-दूसरे से संबंधित हैं। फलस्वरूप सभी समस्याओं का समाधान आवश्यक है। एक समस्या के समाधान से पारिस्थितिक तंत्र की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है।
- भौतिक पर्यावरण एवं जीवित जीव भूमण्डलीय पारिस्थितिकी तंत्र में परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।

- पारिस्थितिक तंत्र में नियमबद्ध ऊर्जा प्रवाह होता है। यह ऊष्मा गतिकी के प्रथम एवं द्वितीय नियमों से संचालित एवं नियंत्रित होता है। फलस्वरूप भूमण्डलीय पारिस्थितिक तंत्र में निरन्तर ऊर्जा प्रवाह होता रहता है।
- पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकता होती है। सौर ऊर्जा तथा पौध सौर ऊर्जा का रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तन उत्पादकता में भिन्नता उत्पन्न करते हैं। फलस्वरूप भिन्न-भिन्न पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकता की मात्रा भिन्न-भिन्न प्रकट होती है।
- पर्यावरण के भौतिक-जैविक संघटकों की एक व्यवस्था है। मानव क्रियायें इस व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न कर रही हैं। फलस्वरूप मानव की अनियमित क्रियाओं को नियंत्रित करना आवश्यक है।
- पर्यावरणीय संतुलन के पक्ष में संपादित उपायों का मूल्यांकन।
- तकनीकी विकास का पुनरावलोकन एवं समीक्षा।
- पारिस्थितिकीय तकनीक का विकास।
- अवनयित/अवकर्षित पर्यावरण का पुनर्जनन।
- पर्यावरणीय प्रदूषणों पर नियंत्रण।
- पर्यावरण पर निरन्तर निगरानी रखना (Monitoring)।
- प्राकृतिक प्रकोप, चरम घटनाओं तथा आपदाओं के प्रभाव को कम करने के लिये इनकी पूर्व सूचना व्यवस्था को प्रतिबद्ध करना।

### पर्यावरण के प्रबन्धान की चुनौतियाँ

पिछले कुछ दशकों से इस विषय में जागरूकता के साथ ही चिन्ता बढ़ रही है कि जिस पर्यावरण में हम रहते हैं, वह बड़ी तेजी से दूषित हो रहा है। जिस हवा में हम सांस लेते और जिस पानी को पीते हैं, वे दूषित हो रहे हैं। वर्षा अनियमित होने लगी है और वन नष्ट होते जा रहे हैं। कई पौधे और जंतु लुप्त हो गये हैं। भूमि की उपजाऊ ऊपरी मृदा (Topsoil) कट रही है और पृथ्वी की ओजोन परत भी धीरे-धीरे नष्ट हो रही है। इससे भू-मण्डल के गर्माने का भी खतरा बन रहा है। पर्यावरण की ऐसी दुर्दशा पृथ्वी पर मानव के अस्तित्व के लिये खतरा बन रही है। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि ये समस्याएँ स्वयं मानव ने पैदा की हैं।

जीवन को आधार देने वाले सभी तत्व हमें अपने पर्यावरण से ही मिलते हैं, किन्तु इसके बदले में हम पर्यावरण को अक्षुण्ण रखने के लिये कुछ नहीं करते। मूलतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पर्यावरण की देख-रेख या उसका प्रबन्धन सही तरह से करें। पर्यावरण में हमारी दखलअंदाजी बहुत कम हो। हमें यह बात सुनिश्चित कर लेनी चाहिये कि इस दखल से पर्यावरण न बिगड़े, जिससे हमारे अस्तित्व को ही खतरा हो जाये। इसके लिये हमें अपने पर्यावरण और उसके सम्मुख खतरों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी होगी। हमारी गतिविधियों से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का हमें अनुमान और विश्लेषण कर लेना चाहिये जिससे हम पहले से ही सावधानी के उपाय ढूँढ़ लें। इसलिये वातावरण के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करने के लिये लोगों को शिक्षित करने की जरूरत है।

### पर्यावरण प्रबन्धान के पक्ष

प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के पर्यावरण के प्रबन्धन में सामाजिक आर्थिक विकास तथा पारिस्थितिकीय सिद्धान्तों को आधार माना जाता है। इसमें पारिस्थितिक तंत्र को नियंत्रित करने वाले पक्षों को मद्देनजर रखा जाता है। सामान्यतया पर्यावरण प्रबन्धन के संघटकों के अन्तर्गत निम्न पक्षों को समाहित किया जाता है-

- पर्यावरण बोध तथा चेतना के स्रोत।
- पर्यावरण बोध का स्तर।
- पर्यावरण नियोजन में पर्यावरण बोध की भूमिका।
- विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तरों पर पर्यावरण की शिक्षा।
- विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों द्वारा पर्यावरण का प्रशिक्षण।
- जनसंचार माध्यमों से पर्यावरण शिक्षा।
- पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर शोध।
- प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण।
- पारिस्थितिकीय संसाधनों का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन।
- पारिस्थितिकीय संसाधन परिरक्षण (Preservation)।
- ऊर्जा, खनिज, मृदा, वन तथा जंगल संसाधनों का संरक्षण।
- मानवीय संसाधनों का उचित उपयोग।
- वर्तमान पर्यावरणीय दशाओं का मूल्यांकन।
- उत्पाद की वर्तमान एवं प्रस्तावित प्रौद्योगिकी एवं विधियों का मूल्यांकन।



## पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ENVIRONMENTAL IMPACT ASSESSMENT)



### अर्थ या संकल्पना

पर्यावरणीय संसाधनों के विदोहन एवं उपयोग से संबंधित मानव क्रियाकलापों के प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले संभावित प्रभावों को पर्यावरणीय अधिप्रभाव तथा इन प्रभावों के आकलन एवं मूल्यांकन को सम्मिलित रूप से पर्यावरणीय अधिप्रभाव आकलन कहते हैं। पर्यावरणीय संसाधनों के विदोहन से संबंधित मानव क्रियाकलापों के प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में सामान्य वक्तव्यों को पर्यावरणीय अधिप्रभाव-कथन कहते हैं। पर्यावरणीय अधिप्रभाव (EIA) तथा पर्यावरणीय अधिप्रभाव-कथन (EIS) के अध्ययन के अन्तर्गत दो प्रमुख पक्षों को सम्मिलित किया जाता है।

1. किसी भी प्रस्तावित कार्यक्रम या योजना के प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों या प्राकृतिक पर्यावरण में भावी परिवर्तनों का अनुमान करना, तथा
2. इन पर्यावरणीय परिवर्तनों के मानव समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन करना।

इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि पर्यावरणीय अधिप्रभाव - आकलन मनुष्यों के विविध कार्यों (यथा- भूमि उपयोग में परिवर्तन, निर्माण कार्यों, उत्पादन कार्यों आदि) द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों एवं इन परिवर्तनों के मानव समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के आकलन एवं निर्धारण की विधि है।

### पर्यावरण अधिप्रभाव के आकलन की विधियाँ

पर्यावरण अधिप्रभाव के आकलन का कार्य संयुक्त राज्य अमेरिका में 'राष्ट्रीय पर्यावरण नीति अधिनियम' के सन् 1969 में पारित होने के साथ ही प्रारंभ हुआ। इस अधिनियम के निम्न चार प्रमुख उद्देश्य थे:

1. मनुष्य एवं पर्यावरण के मध्य मधुर संबंध स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय नीति की घोषणा करना।
  2. पर्यावरण एवं जीवमण्डल की क्षति को रोकने या पूर्णतया समाप्त करने के लिए प्रयास करना तथा मनुष्य के स्वास्थ्य एवं कल्याण कार्य के लिए कार्य करना।
  3. राष्ट्र के लिए उपयोगी प्राकृतिक संसाधनों तथा पारिस्थितिक तंत्रों की समझ को बढ़ाना।
  4. पर्यावरण गुणवत्ता परिषद् की स्थापना करना।
- आज चल कर संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय पर्यावरण नीति अधिनियम (NEPA) के अन्तर्गत पर्यावरणीय अधिप्रभाव के आकलन के लिए निम्न उपायों का प्रावधान किया गया।

### पर्यावरणीय अधिप्रभाव के आकलन के सोपान

- पर्यावरण की वर्तमान दशा का विवरण प्रस्तुत करना।
- प्रस्तावित परियोजना के लक्ष्यों एवं आवश्यकताओं का विवरण प्रस्तुत करना।

- परियोजना के प्रभावों का उल्लेख करना।
- परियोजना के अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक अधिप्रभावों का उल्लेख करना।
- वैकल्पिक परियोजनाओं का सुझाव देना तथा उनका तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करना।
- प्रस्तावित परियोजना की अवस्थिति का भावी विवरण देना।
- परियोजना से उत्पन्न होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को दूर करने के उपायों का सुझाव देना।

आगे चल कर पर्यावरण गुणवत्ता परिषद् में पर्यावरणीय अभिप्रभाव के आकलन एवं कथन के प्रमुख संघटनों में 1979 में संशोधन किया।

### EIA में आकलन किए जाने वाले तत्व

किसी भी क्षेत्र में प्रस्तावित परियोजना के पर्यावरणीय अधिप्रभाव कथन तथा आकलन के अन्तर्गत निम्न तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है।

- जिस क्षेत्र में प्रस्तावित परियोजना को प्रारंभ करना है उस क्षेत्र की वर्तमान पर्यावरणीय दशाओं (भौतिक, जीवीय, सामाजिक तथा आर्थिक) के परियोजना के कार्यान्वयन से पहले विस्तृत विवरण का प्रस्तुतीकरण।
- यदि प्रस्तावित परियोजना का कार्यान्वयन होता है तो उसके द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के विवरण का प्रस्तुतीकरण।
- परियोजना के कार्यरत होने पर उत्पन्न होने वाले अपरिहार्य प्रतिकूल प्रभावों के विवरण का प्रस्तुतीकरण।
- पर्यावरणीय परियोजना के स्थान पर वैकल्पिक परियोजनाओं का प्रस्तुतीकरण।
- पर्यावरणीय संसाधनों के स्थानीय स्तर पर लघुकालिक उपयोग तथा दीर्घकालिक संदर्भ में पर्यावरण की उत्पादकता एवं स्थिरता के अनुरक्षण (maintenance) से संबंधित विवरण का प्रस्तुतीकरण।
- प्रस्तावित परियोजना के लागत खर्च एवं उसके कार्यान्वयन से समाज को मिलने वाले लाभ का मूल्यांकन।
- परियोजना के कार्यान्वयन से उत्पन्न प्रतिकूल प्रभावों के सुधार से संबंधित कारगर उपायों के विवरण प्रस्तुतीकरण।

### EIA के कार्य

- प्रभाव की पहचान
- प्रभाव की माप
- प्रभाव महत्ता की व्याख्या
- अवमूल्यन फल की अभिव्यक्ति
- प्रतिकूल प्रभाव को कम या पूरी तरह से हटाने के लिए उपायों का विकास
- उपयुक्त निरीक्षण प्रणाली की पहचान

### EIA में प्रयुक्त तकनीकी

- नक्शों एवं चार्टों का उपयोग
- संभावित प्रभाव की अनुक्रमणता
- परियोजना के प्रभावों एवं पर्यावरणीय प्रभाव का Martix
- तंत्र विश्लेषण के आधार पर प्रवाह चार्ट का निर्माण
- आर्थिक पर्यावरणीय संपर्कों के अध्ययन के लिए अन्य मॉडलों का विकास।

### EIA के मौलिक घटक

- संभावित क्रिया का विवरण
- संभावित रूप से प्रभावित पर्यावरण का विकास
- व्यवहारिक रूप से उपलब्ध विकल्पों का विवरण
- किसी संभावित क्रिया का संभावित प्रभाव का आकलन एवं उससे संबंधित विकल्प
- उन सभी उपायों की पहचान एवं उनका विवरण जो किसी विशेष परियोजना का निर्माण के प्रतिकूल प्रभाव से संबंध रखता हो।
- प्राप्त सूचनाओं में खण्डों की विद्यमानता एवं उससे संबंधित अनिश्चितता का अध्ययन।
- इस प्रभाव का अध्ययन की किसी अन्य स्थान का पर्यावरण भी इस संभावित परियोजना से प्रभावित होंगे।
- एक संक्षिप्त गैर तकनीकी उपसंहार, जिसमें उपरोक्त दी गई सारी सूचनाएं निहित हैं।



## पर्यावरणीय अधिप्रभाव-आकलन की लिओपोल्ड विधि

- प्रस्तावित परियोजना के लक्ष्यों का विवरण: प्रस्तावित विकास परियोजना के लक्ष्यों की परिभाषा।
- परियोजना के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए तकनीकी संभावनाएं।
- निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रस्तावित कार्य एवं वैकल्पिक योजनाएं।
- योजना के प्रारंभ होने के पहले पर्यावरण की मौजूदा दशाओं का विवरण।
- योजना के कार्यान्वयन के लिए प्रस्तावित वैकल्पिक इंजीनियरिंग कार्यों में से प्रत्येक का लागत खर्च एवं उससे प्राप्त होने वाले लाभ का विश्लेषण।
- प्रस्तावित योजना से संबंधित इंजीनियरिंग रपट तथा वर्तमान पर्यावरण की दशा के विषय में प्रस्तुत विवरण पर विचार: इसके अन्तर्गत प्रस्तावित योजना के कार्यान्वयन से उत्पन्न होने वाले संभावित पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है। प्रत्येक वैकल्पिक योजना के प्रभावों का अलग-अलग मूल्यांकन किया जाता है। निम्न बातों पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है।
  - प्रभावों का परिणाम
  - प्रभावों का महत्व
- प्रत्येक वैकल्पिक योजना के कार्यों के पर्यावरणीय अधिप्रभावों का मूल्यांकन।
- पर्यावरणीय अधिप्रभाव-कथन का प्रस्तुतीकरण: इसके अन्तर्गत समस्त विश्लेषण का सारांश प्रस्तुत किया जाता है तथा प्रत्येक प्रमुख वैकल्पिक योजना के सापेक्षिक गुणों का विवरण दिया जाता है तथा योजना के विषय में अन्तिम संस्तुति जाति है।

## लिओपोल्ड मैट्रिक्स के आधार पर प्रस्तावित योजना के पर्यावरणीय अधिप्रभाव का मूल्यांकन

लिओपोल्ड ने प्रस्तावित योजना के पर्यावरणीय दशाओं पर पड़ने वाले प्रभावों के सापेक्षिक परिमाण तथा सापेक्षिक महत्व के

निर्धारण के लिए रैंकिंग प्रणाली का सुझाव दिया है। इस रैंकिंग प्रणाली में मापक का मान 1 (न्यूनतम प्रचण्ड प्रभाव) से 10 (सर्वाधिक प्रचण्ड प्रभाव) के बीच रहता है। मैट्रिक्स के प्रत्येक बॉक्स को विकर्ण द्वारा दो बराबर भागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक बॉक्स का ऊपरी बायां आधा भाग सापेक्षिक परिमाण के स्कोर मान (1 से 10 तक) तथा निचला दाहिना आधार भाग सापेक्षिक महत्व के स्कोर मान (1 से 10 तक) को प्रदर्शित करता है। ज्ञातव्य है कि प्रत्येक वैकल्पिक योजना के लिए अन्तिम पर्यावरणीय अधिप्रभाव कथन के अन्तर्गत चार सूचनायें तथा विवरण सम्मिलित किये जाते हैं- प्रस्ताव का औचित्य, प्रस्तावित योजना से प्रभावित होने वाली पर्यावरणीय दशाओं का विवरण, प्रस्तावित अधिप्रभाव के मूल्यांकन का पूर्ण विवरण।

पर्यावरणीय अधिप्रभाव के मूल्यांकन के लिए प्रस्तावित लिओपोल्ड की विधि में निम्न कमियां पाई जाती हैं:

- इस विधि में आवश्यकता से अधिक विवरण एवं विशद सूचनाएं मांगी जाती हैं जिसके कारण कागजी कार्यवाही तो बढ़ जाती है परन्तु मुख्य विषय तिरोहित हो जाती है।
- इस विधि के अन्तर्गत अनेक सूचनाओं एवं विवरण के सम्मिलित किए जाने से योजना उलझ जाती है तथा संबंधित अधिकारियों के लिए महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक सार्थक सूचना का चयन करना कठिन हो जाता है।
- इस विधि में भौतिक-जैविक पर्यावरण के प्रति पूर्वाग्रह होता है।

## भारत में EIA

1980 से सभी विकासाधीन परियोजनाओं के लिए आवश्यक बना दिया गया। यह कार्य Environmental Appraisal Committee of India के तत्वाधान में किया गया था। पर्यावरण व वन मंत्रालय ही भारत में मुख्य एजेन्सी हैं जो इसे लागू करती हैं। भारत में निम्नलिखित परियोजनाओं के लिए EIA के लिए दिशा निर्देश विकसित किए गये हैं:

- उद्योग एवं खनन परियोजनाएं
- तापीय विद्युत परियोजनाएं

- नदी घाटी परियोजनाएं
- रेल, रोड एवं राजपथ परियोजनाएं
- पत्तन एवं बंदरगाह परियोजनाएं
- संचार परियोजनाएं
- नवीन नगर परियोजनाएं

### संकल्पना के दोष

- ये मानवीय क्रियाओं को गुणात्मक रूप से तौलता है क्योंकि यह वस्तुनिष्ठ विधि नहीं है। अतः यह मात्रात्मक रूप में पर्यावरण निम्नीकरण बदलाव एवं अवकर्षण को अभिव्यक्त नहीं कर सकता।
- अक्सर आंकड़ों को उपयुक्त रूप से सत्यापित नहीं किया जाता, न ही ये हमेशा नवीन सूचनाओं को सम्मिलित करते हैं।
- ये विधि उन पर्यावरण समस्याओं के बारे में नहीं बतलाता जो किसी पारिस्थितिक तंत्र के सभी हिस्सों को प्रभावित करते हैं।
- ये उन सभी पैमानों में समय के साथ सतत् आने वाली परिवर्तनों का मात्रात्मक नहीं कर पाता जैसे तापमान, आर्द्रता व लवणता में हो रहे सतत् परिवर्तन नहीं बता पाता है।
- पर्यावरण प्रभाव अवमूल्यन के कारण एवं प्रभाव से संबंध अक्सर नहीं समझे जाते हैं। बहुत सी दशाओं, कारणों संबंधित कड़ियों की पहचान नहीं हो पाती।
- EIA में सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों का आकलन अनुपयुक्त एवं अप्रत्याप्त होता है। ऐसा संभव है कि यह प्रभाव अधिक तीक्ष्ण हो। ऐसा संभव है कि सामाजिक प्रभाव के कारण सामाजिक संरचनाएं टूट जाती हैं, जिससे मतभेद गतिरोध Frauma की उत्पत्ति होती है। इधर के वर्षों में अब EIA सामाजिक आर्थिक प्रभावों का भी आकलन करने लगा है।
- EIS (स्टेटमेंट)-EIS रिपोर्ट में बहुत ही लंबे एवं विस्तृत सूचनाओं जैसे आंकड़ों का उपयोग किया जाता है, जिससे यह रिपोर्ट बहुत ही मोटे होते हैं।
- बहुत समय निर्णय लेने की क्रियाविधि EIA में एजेंसीज को सम्मिलित नहीं किया जाता इससे उनका प्रभाव कम हो जाता है।

### EIA में कठिनाईयां

- EIA से संबंधित राजनीतिक चेतना का अभाव
- अप्रत्याप्त लोक भागीदारी
- एक वैधानिक संरचना की कमी एवं इसकी अनुपयुक्त
- संस्थागत आधार की कमी
- अप्रत्याप्त मानव संसाधन एवं उनमें दक्षता का अभाव
- वैज्ञानिक आंकड़ों एवं सूचनाओं की कमी
- अप्रत्याप्त वित्तीय संसाधन

### उद्देश्य

EIA किसी भी विकसित होने वाली परियोजनाओं या विकास की जाने वाली परियोजना के पर्यावरण प्रभाव का पहचान व मूल्यांकन है एवं उन प्रभावों को कम करने के लिए कौन-कौन से उपाय किये जा सकते हैं? उसका लेखा-जोखा भी है। अर्थात् EIA वर्तमान समय में होने वाली किसी क्रिया या भविष्य में होने वाली किसी क्रिया का पहचान तथा इससे भविष्य में होने वाले प्रभावों की पहचान करने से है। EIA एक प्रक्रिया या विधि है जो पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण इस दृष्टि से करता है कि वह कुछ निर्णय लेने में मदद कर सके। EIA एक अंतः वैश्विक प्रक्रिया है जो जैविक, भौतिक और सामाजिक विज्ञानों के आधार पर किसी भी वर्तमान क्रिया का प्रभाव भविष्य में देकर उसकी रणनीति तैयार करती है, जिससे उसके प्रभावों को कम किया जा सके। EIA का मूल उद्देश्य यह है कि विकास के दौरान ऐसा कोई भी पर्यावरणीय नुकसान न हो और पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता में भी कोई कमी नहीं आये।

### पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन प्रक्रिया

पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन को महत्व प्रदान करते हुये पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने जनवरी, 1994 में एक अधिसूचना जारी कर उद्योग, खनन, सिंचाई, विद्युत, परिवहन, पर्यटन, संचार आदि विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत विकास परियोजनाओं के 29 वर्गों के लिये पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन अनिवार्य बना दिया है।

विशेषज्ञ संस्थाओं एवं अन्तरविभागीय सलाहकार समितियों की सहायता से पर्यावरण विभाग विकास परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन पर पहले से ही कार्य कर रहा है। ये विशेषज्ञ संस्थाएँ विभिन्न विकास परियोजनाओं के आर्थिक

पहलुओं एवं उनके पर्यावरणीय प्रभावों का परीक्षण व मूल्यांकन करती हैं। विभिन्न प्रकार की परियोजनाओं के लिये पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के लिये पृथक-पृथक व्यवस्थाएँ की गई हैं-

### नदी घाटी परियोजनाएँ

नदी घाटी परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के लिये निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

- प्रभावी क्षेत्र में क्षरण की समस्या,
- कमान क्षेत्रीय विकास,
- प्रभावित लोगों के पुनर्वास की समस्या,
- विभिन्न जलीय बीमारियों की आशंका,
- भूकम्प जैसे प्राकृतिक आपदाओं की समस्या,
- निर्वनीकरण एवं प्राणी तथा वनस्पति जगत की हानियाँ।

### उत्खनन परियोजनाएँ

- भूमि का क्षरण,
- जल प्रदूषण,
- वायु प्रदूषण,
- निर्वनीकरण के साथ वनस्पति जगत् एवं प्राणी जगत की हानि,
- प्रभावित लोगों के पुनर्वास की समस्या और,
- ऐतिहासिक व धार्मिक स्थलों तथा स्मारकों पर प्रभाव।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है और स्पष्ट है कि इसके लिये खनिज-संसाधनों की प्रचुर मात्रा में आवश्यकता है। इसलिये उत्खनन के क्षेत्र में पर्यावरणीय प्रभाव-मूल्यांकन की प्रक्रिया को अधिक वैज्ञानिक एवं विवेक सम्मत बनाने की जरूरत है।

### औद्योगिक परियोजनाएँ

औद्योगिक परियोजनाओं के लिये वर्तमान में पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन प्रक्रिया को वैज्ञानिक एवं न्यायिक दृष्टि से अधिक प्रभावी बनाया जा रहा है। विभिन्न परम्परागत तकनीक आधारित

इकाईयों में प्रदूषण नियंत्रक प्रणालियों एवं उपायों के प्रयोग की बाह्यता आरोपित की जा रही है।

### तटीय क्षेत्र प्रबन्धन

समुद्र तटीय क्षेत्रों की आर्थिक, पर्यावरणीय एवं सांस्कृतिक सुरक्षा के लिये सरकार द्वारा तटीय राज्यों को विशिष्ट निर्देश जारी किये गये हैं। इसके अनुसार, उच्च ज्वारीय रेखा से 500 मीटर की दूरी तक कोई भी संरचनात्मक गतिविधियाँ चलाने पर प्रतिबंध लगा दिया है। केरल के क्वीलोन जिले में तटीय गतिविधियों के जन-जीवन पर प्रभाव के अध्ययन के लिये एक विशेषज्ञ समिति भी गठित की गई है।

### परिवहन क्षेत्र

परिवहन क्षेत्र की परियोजनाओं के पर्यावरणीय प्रभाव निम्न हो सकते हैं-

- प्राकृतिक व भौतिक संसाधनों की हानि,
- प्राकृतिक पारिस्थितिक संसाधन का हास,
- मानवीय आर्थिक विकास संसाधन में हास तथा
- सांस्कृतिक एवं अन्य अभौतिक मूल्यों पर प्रहार।

### आण्विक ऊर्जा

आण्विक ऊर्जा परियोजनाएँ जहाँ ऊर्जा-उपलब्धता के सर्वाधिक प्रभावशाली साधन के रूप में विकसित हो रही हैं, वहीं इनके पर्यावरणीय प्रभाव निम्न हैं-

- जल, मृदा एवं वायु पर विकिरणीय प्रभाव,
- तापीय जल के निक्षेप से तापीय प्रदूषण,
- निर्वनीकरण से प्राणी जगत तथा वनस्पति जगत् में हानि,
- पुनर्वास की समस्या,
- रेडियोधर्मी निक्षेपों के निष्कासन की समस्या, और
- स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दुष्प्रभाव।



## सतत् या पोषणीय विकास (SUSTAINABLE DEVELOPMENT)



सतत् विकास किसी भी क्रिया विधि की स्थिरता प्राप्त करने के लिए एक कार्य योजना है, जहाँ भी संसाधनों का उपयोग और जहाँ तत्काल और अगली पीढ़ी में भी इसकी माँग है। सतत् विकास इस ग्रह पर भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं के लिए सीमित संसाधनों को बनाए रखने का एक आयोजन सिद्धान्त है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें मानव समाज के लिए एक ऐसे वांछनीय राज्य की कल्पना है जिसमें संसाधनों का प्राकृतिक जैविक प्रणालियों की संपूर्णता, स्थिरता और सौंदर्य को कम किये बिना मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करना है।

वर्तमान उत्पादन तकनीक ने पर्यावरणीय अव्यवस्था की समस्या को जन्म दिया अनेक मानवीय उत्पादन क्रियाएं सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र को प्रदूषित कर दिया जो आज एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। इन वर्तमान समस्याओं के कारण मानव की विकास पद्धति और प्रक्रियाओं को जारी रखने को उचित नहीं कहा जा सकता। साथ ही साथ संसाधनों का अंधा-धुन्ध उपभोग अगली पीढ़ी के लिए खालीपन का एहसास भी करा रहा है। क्योंकि एक निश्चित द्रव्यमान की वस्तु का उपयोग एक सर्वेक्षण अनुसार सभ्यता के आदि काल से सारे विश्व में विभिन्न खनिजों का जितना शोषण या उपयोग हुआ, उतना केवल संयुक्त राज्य अमेरिका 1914-1952 की अवधि में हुआ। विश्व संसाधन, 1994-95 के अनुसार “उत्तर के संसाधन उपयोग प्रतिरूप आज भी पर्यावरण द्वारा दीर्घकाल तक वहनीय नहीं है”। उसको उसकी समाप्ति की ओर ही ले जायेगा। इसी ऑकलन ने मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने को विवश कर दिया और यह कहाँ जाने लगा कि वर्तमान पीढ़ी जिन संसाधनों का उपभोग

कर रही हैं यह एक पैत्रिक सम्पत्ति है ये हमें हमारे पूर्वजों के द्वारा हमें मिला और इसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाना हमारा नैतिक कर्तव्य है। मानव को अपने विकास प्रक्रिया में ऐसे संसाधनों की खोज और उपभोग करने चाहिए जो सर्वकालिक और अविकारी हो और जब तक ऐसे संसाधनों की खोज न कर ली जाये तब तक इन परम्परागत संसाधनों को विवेकशील तरीकों से उपभोग किया जाना चाहिए। और यहीं से टिकाऊ या सतत् या पोषणीय विकास की अवधारणा ने जन्म लिया।

### परिभाषा

“पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र विश्व आयोग (United Nations World Commission on Environment and Development) 1887 की अपनी रिपोर्ट ‘आवर कॉमन फ्यूचर’ में सतत विकास को परिभाषित किया कि “विकास की वह प्रक्रिया जिसमें वर्तमान की आवश्यकता बिना भावी क्षमता, योग्यताओं से समझौता किये पूरी की जाती है।”

**रॉबर्ट रेपीटो के अनुसार-** “सतत् विकास से आशय विकास की उस रणनीति से है जो सभी प्राकृतिक मानवीय, वित्तीय तथा भौतिक साधनों का सम्पदा का आर्थिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि करने के लिए प्रबन्ध करती है”।

“संयुक्त राष्ट्र चार्टर सिद्धान्तों” के तहत मिले नियम घोषणा में आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और पर्यावरणीय संरक्षण सहित सतत् विकास पर सिद्धान्तों और संधियों को व्याख्यायित किया। विस्तृत रूप में “सतत् विकास एक तंत्र

उपागम है जो भविष्य पीढ़ी और अपने स्वयं के कल्याण तथा प्राकृतिक, निर्मित और सामाजिक सम्पदाओं के प्रबन्धन से सम्बन्धित है।”

संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रयोगिक शब्द सतत् विकास में मिश्रित रूप में दोनों, भूमि विकास और मानव विकास के व्यापक मुद्दे जैसे कि शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जीवन के मानक आदि को शामिल किया गया है।

### ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

‘सतत विकास’ की अवधारणा की जड़े 12वीं और 16वीं शताब्दी के मध्य जंगल प्रबन्धन से जुड़ी हुई हैं। यद्यपि पिछले 5 दशकों में यह अवधारणा काफी महत्वपूर्ण ढंग से व्यापक रूप ले लिया है। समकालीन अर्थों में सतत् (Sustainable) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1972 में क्लब ऑफ रोम की रिपोर्ट ‘लिमिट टु ग्रोथ’ में किया गया था जो ‘मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट’ के डेनिस और डोनेल्डा मीडोज (Donella Meadows) के नेतृत्व में वैज्ञानिकों के एक समूह द्वारा लिखी गयी थी। लेखक ने वांछित वैश्विक संतुलन का राज्य को व्याख्यायित करते हुए ‘सतत्’ (Sustainable) शब्द का प्रयोग किया।

- 1980 में, वैश्विक प्राथमिकता के रूप में प्रकृति के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ ने सतत् विकास के लिए विश्व संरक्षण रणनीति प्रकाशित की।
- 1982 में प्रकृति के लिए ‘संयुक्त राष्ट्र विश्व चार्टर’ ने पाँच सिद्धान्तों को उठाया जिसमें मानवीय आचरण प्रकृति को प्रभावित कर रहा है को निर्देशित और जाँचा जा रहा है।
- 1987 में, पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र विश्व आयोग ने अपनी एक रिपोर्ट ‘अवर कामन फ्यूचर’ प्रकाशित की, क्योंकि इस कमीशन को अध्यक्ष नार्वे के प्रधानमंत्री ‘ग्रो हरलेम ब्रुटलैण्ड’ (Gro Harlem Brundtland) थे इस लिए बाद में इस रिपोर्ट को ब्रुटलैण्ड रिपोर्ट के नाम से जाना जाने लगा। रिपोर्ट में शामिल पारिभाषा जो अब तक सार्वधिक व्यापक रूप से मान्य परिभाषाओं में से एक है जिसमें कहा गया: कि “सतत् विकास ऐसी विकास प्रक्रिया है जिसमें भविष्य पीढ़ी से समझौता किये बिना वर्तमान की आवश्यकताओं और जरूरतों को पूरा करने से है”। ब्रुटलैण्ड

रिपोर्ट में कहा गया है कि सतत् विकास में दो मुख्य अवधारणा है।

1. ‘जरूरत’ की अवधारणा, विशेष रूप से दुनिया के गरीबों की आवश्यकता जरूरतों को सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिए, और
2. वर्तमान और भविष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्यावरण क्षमता के अनुसार सामाजिक संगठन और प्रौद्योगिक द्वारा लगाये गये सीमाओं की अवधारणा है।

1992 में, विकास और पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र ने एक ‘आर्थ चार्टर’ प्रकाशित किया जिसमें 21वीं सदी में टिकाऊ, और शान्तिपूर्ण वैश्विक समाज के निर्माण की रूपरेखा प्रस्तुत की। एजेन्डा-21 सतत् विकास के लिए अन्थोन्याश्रित स्तम्भ के रूप में विश्व के देशों के जानकारी, एकीकरण, और भागीदारी के लिए तथा विकास के लक्ष्य को हासिल करने की एक मूल ढाँचा की कार्य योजना तैयार किया है। इसके अलावा एजेन्डा 21 सतत् विकास को प्राप्त करने के लिए निर्णय में व्यापक जन भागीदारी की बुनियादी शर्त पर भी जोर देता है।

2013 के अध्ययन के आधार पर कुछ बदलाव प्रस्तावित किये गये हैं, जिसमें कहा गया कि स्थिरता के लिए सुधार कार्यक्रम किसी भी देश से संबंधित चार क्षेत्रों को ध्यान में रखकर या के द्वारा किया जाना चाहिए जो कि परितंत्र, आर्थतंत्र, राजनीति और संस्कृति है।

### भारतीय परिपेक्ष में

पर्यावरणीय सततीय विकास के विषम में भारतीय ऐतिहासिक परिपेक्ष में बात की जाये जो हमें प्राचीनकाल के वेदों उपनिषदों आदि ग्रंथों को खंगालना पड़ेगा। भारतीय मनीषियों विद्वानों और दार्शनिकों ने जिस दर्शन का सूत्रपात किया वह पर्यावरण एवं प्रकृति को मूल में रखकर ही किया जो विश्व के अन्य किसी भी संस्कृति में नहीं दिखाई देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान विश्व जिस पर्यावरण शिक्षा का ढिढ़ोरा पीट रहा है भारत उस शिक्षा से अन्जान नहीं है बल्कि हमें शिक्षित करने का दावा करने वाले सम्पूर्ण विश्व के पर्यावरणीय संकट में ले जाने का श्रेय पश्चिम जगत की उपभोक्तावादी संस्कृति को ही जाता है।

भारतीय संस्कृति के लोग सदैव स्वयं को प्रकृति का हिस्सा माना और उन शक्तियों के संरक्षणात्मक परम्पराओं का विकास किया जो जीवन का मूल है जिनमें सूर्य, जल, पर्वत एवं वनस्पतियों आदि को मानवीय और मूर्तिरूप देकर उसे अपना पूज्य बनाया। भारतीय दर्शन और संस्कृति में जड़ एवं जीव की जिस समृद्ध परम्परा को स्थापित किया वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीय संस्कृति में संसाधनों को इतना ही उपभोग की बात की गयी है। जितने से स्रोत पर कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़े और जितने से आपके जीने की आवश्यकता है जिससे हमारी आने वाली पढ़ी इस सुन्दर प्रकृति का उपभोग कर सकें और हमारा नाम आदर से ले सकें। यहीं तो वर्तमान सतत् विकास की अवधारणा है। इसे अथर्ववेद के भूमिसूक्त में इस प्रकार रेखांकित किया गया है—

*अख्यं ते पृथिवीं स्योन मस्तु*

*मातरम् औषधीनाम्*

*मा ते मर्म विमृग्वारि मा ते वृदयमर्पिणम्।*

अर्थात् हे भूमि, तेरे वन हमारे लिए सुखदायी हो भूमि तेरे वृक्षों को मैं इस तरह काटूँ कि वह शीघ्र ही पुनः अंकुरित हो आएँ उन्हें सम्पूर्ण रूप से काट कर मैं तेरे गर्मस्थल पर प्रहार न करूँ। इससे स्पष्ट सतत् विकास की आवश्यकता और क्या हो सकती है।

## सतत् या पोषणीय विकास

(Sustainable Development)

सतत् विकास की धारणा अपेक्षाकृत नवीन है। विकास के परम्परागत ढाँचे के जी.एन.पी. (GNP) को प्रमुख स्थान-सौंपा गया है, व्यक्तियों को नहीं जो कि ठीक नहीं है।

आर्थिक संवृद्धि को उस प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है। जिसके दौरान देश में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि होती है। उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप स्वाभाविक ही है कि हमारी प्राकृतिक सम्पदा कम होती जाती है।

उत्पादन की वर्तमान टेक्नोलॉजी (Technology) प्राकृतिक साधनों का बड़ी निर्दयता से शोषण कर ही है। यह दोनों ही प्रकार के प्राकृतिक साधनों का उपयोग कर रही है— गैर

पुनरुत्पादनीय साधन (Nonrenewable Resources), जैसे— कोयला, गैस और पेट्रोलियम और पुनरुत्पादनीय साधन (Renewable Resources) जैसे— वन, जल, सूर्य का प्रकाश आदि।

अनुमानतः सभ्यता के आदि काल के सारे विश्व में विभिन्न खनिजों का जितना शोषण या उपयोग हुआ, उतना केवल संयुक्त राज्य में 1914-1952 की अवधि में हुआ है। World Resources, 1994-95 के अनुसार— उत्तर के संसाधन उपयोग का प्रतिरूप आज भी पर्यावरण द्वारा दीर्घकाल तक वहनीय नहीं है।”

यदि इन प्राकृतिक संसाधनों का इसी प्रकार प्रयोग होता रहा तो भावी पीढ़ी को इन प्राकृतिक संसाधनों से वंचित होना पड़ेगा।

यही नहीं वर्तमान उत्पादन तकनीक ने पर्यावरणीय अव्यवस्था की गम्भीर समस्या को जन्म दिया है। अनेक उत्पादन क्रियाएँ जल, वायु एवं भूमि को प्राकृतिक गुणवत्ता में बदलाव कर रही हैं। जो आज एक चिन्ता का विषय हैं। इन सब समस्याओं के कारण विकास की वर्तमान पद्धति व प्रक्रिया को जारी रखना उचित नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि एक निश्चित द्रव्यमान की वस्तु का उपभोग इसकी समाप्ति की ओर ही ले जायेगा इसी आकलन ने मानव के कुछ करने के लिए विवश कर दिया और यह कहा जाने लगा कि मानव को अपनी अंधाधुंध विकास प्रक्रिया में ऐसे संसाधन का उपयोग करना चाहिए, जो सर्वकालिक और अविकारी हो और जब तक संसाधनों की खोज न करती जाये तब तक परम्परागत संसाधनों को विवेकशील तरीकों से उपभोग किया जाये। बस यहाँ से टिकाऊ विकास की संकल्पना का जन्म माना जाने लगा। इसके विकल्प के रूप में सतत् विकास की अवधारणा का जन्म हुआ।

सतत् विकास की अवधारणा का प्रतिपादन सबसे पहले 1987 में पर्यावरण एवं विकास के लिए विश्व आयोग (World Commission on Environment and Development) के द्वारा प्रकाशित आवर कॉमन फ्यूचर (Our Common Future) नामक ब्रुण्डलैण्ड रिपोर्ट (Brundland Report) में किया गया था।

## अर्थ एवं परिभाषाएँ

सतत् विकास का शाब्दिक अर्थ यह है कि ऐसा विकास जो जारी रह सके, टिकाऊ बना रह सके। सतत् विकास वह प्रक्रिया है

जिसमें आर्थिक, राजकोषियापारिक, कृषि व उद्योग क्षेत्रों में विकास नीतियों का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है जिससे विकास को आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरण की दृष्टि से कायम रखा जा सके।

सतत् विकास में न केवल वर्तमान पीढ़ी पर बल्कि भावी पीढ़ी के विकास को भी ध्यान में रखा जाता है। सारभूत बात यह है कि वर्तमान पीढ़ी का विकास भावी पीढ़ी के अविकास की लागत पर नहीं होना चाहिए। इस प्रकार सतत् विकास भावी विकास को संरक्षण प्रदान करता है और वर्तमान में विकास संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति कर्त्ता विकास से समझौता किये बिना करता है।

- **ब्रुण्डलैण्ड आयोग (Brundland Commission)** ने सतत् विकास को इस प्रकार परिभाषित किया है, “विकास की वह प्रक्रिया जिसमें वर्तमान की आवश्यकताएं बिना भावी क्षमता, योग्यताओं से समझौता किये पूरी की जाती है।”
- **रॉबर्ट रेपीटो (Robbert Repetto):** “सतत् विकास से आशय विकास की उस रणनीति से है जो सभी प्राकृतिक, मानवीय वित्तीय तथा भौतिक साधनों का सम्पदा (Wealth) तथा आर्थिक कल्याण में दीर्घकालीन वृद्धि करने के लिए प्रबन्ध करती है।”
- **सतत् विकास की अवधारणा अंतर्पीढ़ी (Intra-generation) और अंतर्पीढ़ी (Inter-generation)** दोनों की ओर ध्यान देती है। इस प्रकार यह सब पीढ़ियों (वर्तमान और भावी दोनों) की अपनी सम्भाव्य क्षमताओं का सर्वोत्तम उपयोग करने में समर्थ बनाती है। सतत् विकास की अवधारणा इस विश्वास पर आधारित है कि भावी पीढ़ी को कल्याण में भागीदारी से है, न कि गरीबों एवं अभाव में भागीदारी से है जैसा कि महबूब उल हक ने बिचार प्रकट किया है कि “स्थायित्व का मतलब गरीबी और मानवीय दुःख के वर्तमान स्तर को बनाये रखना नहीं है। यदि वर्तमान कष्टकारक है और संसार की अधिकांश जनसंख्या को स्वीकार्य नहीं है तो उसे स्थायी बनाने से पहले बदला जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में जीवन में उपयोगी अवसरों को बनाये रखना चाहिए, न कि मानवीय अभावों को।” इस प्रकार व्यक्तियों के रोजगार तथा प्रकृति के अनुकूल समझी जाती है।

- **व्यक्ति, रोजगार तथा पर्यावरण (प्रकृति) (Pro-People, Pro-job and Pronation)** इस विचारधारा में गरीबी को कम करने पर रोजगार पर सामाजिक एकीकरण तथा पर्यावरण के पुनर्जीवन अथवा नवीनीकरण पर ज्यादा बल दिया जाता है।

वस्तुतः सतत् विकास की धारणा गांधी के आर्थिक चिन्तन का मुख्य बिन्दु रहा है। गांधी की भाषा में भावी पीढ़ियों के हित का चिन्तन करना हिंसा है। गांधी ने बड़ी गहनता से अनुभव किया था कि प्रकृति हमारी सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है। परन्तु किसी की लालसा की पूर्ति नहीं कर सकती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सतत् विकास आर्थिक विकास की वह प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य प्राकृतिक साधनों तथा पर्यावरण को बिना हानि पहुंचाए वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों दोनों के जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life) को बनाये रखना है।

## सतत् विकास की विशेषताएं

सतत् विकास की प्रमुख की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

### 1. व्यक्तियों को प्रमुख स्थान (Main Importance to Man)

सतत् विकास की प्रक्रिया में व्यक्तियों को प्रमुख स्थान दिया गया है। इस प्रकार सतत् विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्तिगामी विकास से समझौता किये बिना ही करता है। इस प्रकार सतत् विकास में न केवल वर्तमान पीढ़ी बल्कि पीढ़ी के विकास का भी ध्यान रखा जाता है।

### 2. समानता पर जोर (Emphasis on equality)

यह वितरणात्मक अंतर्पीढ़ी (विभिन्न पीढ़ियों के बीच) और अंतर्पीढ़ी (एक ही पीढ़ी के विभिन्न वर्गों के बीच) समानता पर जोर देती है। सतत् विकास की समानता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस संकल्पना में प्रत्येक व्यक्ति को न केवल कुछ विशेषाधिकार व्यक्तियों को उचित अवसर प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।

### 3. मानव विकास (Human Development)

सतत् विकास में गरीबी को कम करने पर, रोजगार पर, सामाजिक एकीकरण, पर्यावरण के नवीनीकरण पर जोर देने के

साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि पर अधिक विनियोग की आवश्यकता पर भी जोर दिया जाता है।

#### 4. पर्यावरण संरक्षण (Environment Conservation)

विकास की लागत, विशेषकर-हानि के बारे में ध्यान दिया जाना चाहिए। अतः पर्यावरण के संरक्षण की बहुत बड़ी आवश्यकता है। अतः सतत् विकास प्रकृति तथा वातावरण के संरक्षण के अनुकूल होता है।

#### 5. गुणात्मक सुधार (Qualitative Improvement)

सतत् विकास में पर्यावरण को केवल संरक्षित नहीं किया जाता है बल्कि उसमें गुणात्मक सुधार के भी प्रयास किये जाते हैं। वस्तुतः सतत् विकास में पर्यावरणीय घटकों, जैसे- वायु, जल, एवं भूमि की गुणवत्ता अक्षुण्ण बनी होती है। तथा ये वर्तमान व भावी पीढ़ियों की सामूहिक विरासत का प्रतिनिधित्व करते हैं।

### सतत् विकास की शर्तें

सतत् विकास की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित हैं:

#### 1. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources)

सतत् विकास की पहली शर्त यह है कि देश के गैर-पुनरुत्पादनीय एवं पुनरुत्पादनीय प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए आर्थिक विकास किया जाना चाहिए।

#### 2. प्रदूषण रहित विकास (Pollution Free Development)

उत्पादन की ऐसी विधियों को अपनाया जाना चाहिए जो पर्यावरण (प्रकृति), व्यक्तियों तथा रोजगार के अनुकूल (Pro-nature, Pro-people and Pro-job) हों। वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण व जल प्रदूषण आदि न्यूनतम सम्भावित स्तर पर होना चाहिए। वस्तुतः सतत् विकास हरित जी.एन.पी. (Green G.N.P.) जिसके राष्ट्रीय उत्पादन में पर्यावरण तथा वातावरण में हुए शीत के परिणामों को अनुमान लगाया जाता है, पर जोर देता है।

#### 3. जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि (Increase in Quality of life)

सतत् विकास में जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु निम्नलिखित कार्यक्रमों पर जोर दिया जाना चाहिए ताकि दीर्घकालीन वास्तविक

प्रति व्यक्ति आय की दर में वृद्धि होने के साथ-साथ लोगों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो सके।

(i) सामाजिक क्षेत्र, जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य व पोषण आदि।

(ii) मानवीय न्याय, सुरक्षा व रोजगार के अवसरों की उपलब्धता।

#### 4. भावी पीढ़ी की अवहेलना नहीं (Future Generation not ignored)

सतत् विकास में वर्तमान पीढ़ी का विकास भावी पीढ़ी के अविास की लागत पर नहीं होना चाहिए। इस प्रकार सतत् विकास में भावी पीढ़ी को संरक्षण प्रदान करना चाहिए।

#### 5. विकास नीतियां (Development Policies)

सतत् विकास में व्यापार, कृषि, उद्योग आदि क्षेत्रों में विकास नीतियों का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे विकास से आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से कायम रखा जा सके।

#### 6. उत्थान या स्फूर्ति अवस्था (Take-off Stage)

प्रो. रोस्टोव (Rostov) के अनुसार सतत् विकास की स्थिति उत्थान अवस्था (Take-off Stage) को पार करने के पश्चात् ही उत्पन्न होती है।

### सतत् आर्थिक विकास का महत्त्व

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आर्थिक विकास की अवधारणा का महत्त्व निम्न बिंदुओं से स्पष्ट होता है-

- इसमें वर्तमान पीढ़ी का विकास भावी पीढ़ी के अविास की लागत पर नहीं किया जाता है। अर्थात् इसमें बिना भावी पीढ़ी के जीवन स्तर को क्षति पहुंचाए वर्तमान जनसंख्या के जीवन स्तर में वृद्धि पर जोर दिया जाता है।
- सतत् विकास की अवधारणा प्राकृतिक पूंजी के स्टॉक के संरक्षण पर जोर देती है। प्राकृतिक पूंजी स्टॉक से आशय सभी प्रकार के पर्यावरण तथा प्राकृतिक संसाधनों की परिसंपत्तियों के कुल स्टॉक से है। इस प्रकार सतत् विकास में भविष्य में इन संसाधनों की कमी की संभावना नहीं रहती है।



- सतत् आर्थिक विकास में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ-साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, गरीबी, उन्मूलन, सामाजिक न्याय पर जोर दिया जाता है। जिससे जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- सतत् विकास में ऐसी उत्पादन तकनीकी को अपनाया जाता है तो पर्यावरण के अनुकूल हो। फलतः पर्यावरण प्रदूषण की समस्या नहीं उत्पन्न होती है। संक्षेप में सतत् आर्थिक विकास के पर्यावरण का संरक्षण होता है।

सतत् विकास: विशेषताएं, शर्तें व महत्व		
विशेषताएं	शर्तें	महत्व
1. व्यक्तियों को प्रमुख स्थान	प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण	भावी पीढ़ी को महत्व
2. समानता पर जोर	प्रदूषण रहित विकास	प्राकृतिक पूंजी का संरक्षण
3. मानव विकास	जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि विकास नीतियों	जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि
4. पर्यावरण संरक्षण	स्फूर्ति अवस्था के बाद	पर्यावरण अनुकूल
5. पर्यावरण में गुणात्मक सुधार	-	उत्पादन तकनीक

### सतत् विकास की माप: हरित राष्ट्रीय आय या हरित लेखांकन

- सतत् विकास की माप हरित राष्ट्रीय आय द्वारा की जाती है।
- हरित राष्ट्रीय आय वह राष्ट्रीय आय है जो शुद्ध राष्ट्रीय आय एवं प्राकृतिक साधनों के शोषण तथा पर्यावरण दूषित होने के परिणामों को ध्यान में रखती है।
- हरित राष्ट्रीय आय शुद्ध राष्ट्रीय आय तथा प्राकृतिक पूंजी की घिसावट के अंतर के बराबर होती है अर्थात्
- हरित राष्ट्रीय आय (Green National Income) = शुद्ध राष्ट्रीय आय - प्राकृतिक पूंजी की घिसावट / Net National Income - Depreciation of Natural Capital जहाँ
  - (i) शुद्ध राष्ट्रीय आय (Net National Income) = एक वर्ष की अवधि में किसी देश के निवासियों द्वारा उत्पादित अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं की बाजार कीमत।
  - (ii) प्राकृतिक पूंजी घिसावट (Depreciation of Natural Capital)

= विकास की प्रक्रिया प्राकृतिक साधनों के निरन्तर उपयोग से उनकी कीमतों में होने वाली कमी।  
सामान्यतः हरित राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि सतत् विकास का संकेतक है।

### हरित निर्देशांक (Green Index)

विश्व बैंक (World Bank) की Environmentally Sustainable Development Division द्वारा हरित निर्देशांक का निर्माण किया गया है। हरित निर्देशांक में राष्ट्रीय सम्पदा के माप प्रस्तुत किये गये हैं। राष्ट्रीय धन में भूमि, जल, सागवान, खनिज पदार्थ, सभी प्राकृतिक संपदा आदि का मूल्यांकन किया जाता है। और अन्य सभी सम्पदा के साथ इनके मूल्य जोड़कर राष्ट्रीय संपदा के अनुमान लगाये जाते हैं।

हरित निर्देशांक के अनुसार, भारत में प्रति व्यक्ति संपदा \$ 4,300 मूल्य की है, जबकि ऑस्ट्रेलिया में यह \$ 8,35,000 मूल्य की और इथियोपिया में \$ 400 मूल्य की है। विश्व की औसत प्रति व्यक्ति संपदा \$ 86,000 है।